chapter-5

पंचम परिच्छेद :

" गुजरात के सन्तों की हिन्दी-वाणी : साहित्यिक मूल्यांकन "

पंचम परिच्छेद

"गुजरात के सन्तों की हिन्दी-वाणी : साहित्यिक मूल्यांकन "

'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते समय हम मात्र शब्द और अर्थ के समुचित सम्पादन पर ही विचार नहीं करते अपितु इसके साथ मानवहित के सम्पादन की बात पहले सोचते हैं ।[१] साहित्य वस्तुत: लोकमंगल की साधना है, जिसका उद्देश्य मानव-जीवन में दानवत्व का नाश और देवत्व का विकास करना है । देवत्व की कल्पना का आकर्षण हमारे जीवन में भरना साहित्य का ही काम है । इसी देवत्व की उपलब्धि अपने में करके मानव-जीवन देवत्व से और सबसे महान बनता जा रहा है ।[२] सन्तों का समस्त साहित्य इसी लोक-मंगल की कामना में रचा गया । साहित्य सृजन में इनका लक्ष्य आत्मानंद तो था ही, उसके परिवेश में सामाजिक चेतना भी थी । इसलिए सन्तों के काव्य में हमें जहाँ एक ओर अध्यात्म की शुष्क चर्चा मिलती है, वहाँ दूसरी ओर उसमें मानव-जीवन के लिए सरस अमर सन्देश भी है । सन्तों का साहित्य संक्षेप में एक ऐसा सत्साहित्य है, जिसमें मानव के युग युग के संस्कारों की संचित निधि है, साधना एवं विश्वास के बल पर जिसमें जीवन के अमर सत्य-खण्डों का संचय है । डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने इसीलिए कहा है कि 'संतों की रचनाएँ सहज काव्य की विभूति हैं ।[३] डॉ. भगीरथ मिश्र ने साहित्य उत्थान के जिन प्रेरक तत्त्वों : सत्य, मानवता, निर्मल चरित, सौंदर्य, भव्य कल्पना, भावुक व्यंग्य और लोकानुभव की अभिव्यक्ति : की समीक्षा काव्य शास्त्र के अन्तर्गत की है[४] वे सभी तत्त्व संत काव्य के प्रेरक बल हैं । अब हम काव्य के विविध मानदंडों के आधार पर गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी का अध्ययन करेंगे ।

वर्ण्य विषय :

दक्षिण एवं उत्तर भारत के सन्तों की भाँति गुजरात के सन्तों की वाणी में भी आत्म-प्रतीति की उत्कट अभिलाषा एवं

---

१. 'काव्य के रूप' बा. डॉ. गुलाबराय । पृ. २-३ ।
२. 'कला, साहित्य और समीक्षा' डॉ. भगीरथ मिश्र । पृ. ६ ।
३. हि. नि. का. दा., पृ. ६३६ ।
४. 'काव्यशास्त्र' पृ. ३३२ - ३४२ ।

ब्रह्म-ज्ञान की अदम्य भूख है। ज्ञान की घटा को देखकर इनका मन-मयूर नाच उठता है।[1] ज्ञानी का रूप ही इनका रूप है।[2] अतः इन सन्तों की वाणी किसी पण्डित अथवा कवि की वाणी न होकर ज्ञानी की वाणी है।[3] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इनकी वाणी कवि-परम्परानुमोदित न होकर स्वसंवेद्य स्वानुभूतिमूलक भुक्तभोगी आत्मा की पुकार है, जिसमें शुष्क शास्त्र ज्ञान की खिल्ली उड़ायी गयी है :—

'जूठे पंडित जूठे शास्त्र, सब जूठ कूं जूठ सुनाया रे।'
—अनुभवानंद।

इनकी वाणी में वर्णित विषय को हम मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

१. आध्यात्मिक
  :१: सृजनात्मक।
  :२: ध्वंसात्मक।

२. सामाजिक
  :१: राजनीतिक व्यवस्था।
  :२: धार्मिक व्यवस्था।
  :३: वर्ण भेद।
  :४: नारी भावना।
  :५: आर्थिक जीवन।
  :६: मनोरंजन एवं आनंद प्रमोद के साधन।

आध्यात्मिक विषय :

:१: सृजनात्मक : अध्यात्मवाद की चर्चा ही इन सन्तों का प्रमुख विषय है, जिसकी

---

१. 'ज्ञान-घटा चढ़ आयी अचानक ज्ञान-घटा चढ़ आयी'—अखो।
२. 'ज्ञानी को रूप, सो रूप हमारा'— अनुभवानंद।
३. 'ज्ञानी ने कविमां न गणीश' : अर्थात् ज्ञानी को कवि के रूप में मत गीनो।:—अखो।

विस्तृत व्याख्या हम प्रस्तुत निबन्ध के चतुर्थ परिच्छेद में कर चुके हैं । आध्यात्मिक निरूपण में गुजरात के सन्तों की भावधारा उत्तरभारत के सन्तों की भाव-धारा से अभिन्न होते हुए भी कुछ विशिष्ट है । गुजरात की समग्र सन्तवाणी असाम्प्रदायिक है । गुजरात में फैले हुए विभिन्न सन्त सम्प्रदाय एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी मूल में एक ही विचार सरणि पर अवलम्बित हैं—एक और अखण्ड ब्रह्म की अभिव्यक्ति । इसीलिए इनमें साम्प्रदायिक साहित्य कम मिलता है और भक्ति साहित्य की प्रचुरता है । यहाँ तक कि कठिन साधनामूलक शैव और शाक्त सम्प्रदायों का पौराणिक रूप ही गुजरात में प्रचलित है । इन सम्प्रदायों से संपर्कित जिन सन्तों ने काव्य-रचनाएँ की हैं वे अधिकांश में भक्तिमूलक ही हैं । इनमें न तो खण्डन-मंडन की प्रवृत्ति ही है और न सगुण-निर्गुण का भेद ही प्रतीत होता है । राम और कृष्ण के भेद से भी ये परे हैं । इनके मन जो राम है, वही कृष्ण है और जो कृष्ण है, वही राम है ।[१] नाम साधना को इन्होंने विशेष महत्त्व दिया है । अत: अध्यात्म के क्षेत्र में इन सन्तों की भावधारा न तो कठिन साधनामूलक ही है और न तर्करूपा है, बल्कि भावरूपा है और विशेष समझौतावादी है।

उत्तरभारत की भक्ति साधना की गति निर्गुण से सगुण की ओर है जबकि गुजरात की भक्ति-साधना का रुख सगुण से निर्गुण की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत होता है । कबीर के बाद भक्ति के क्षेत्र में जो क्रान्ति

---

१. 'गवरी कीर्तन माला'—४१७ ।

की लहर पैदा हुई वह हमें सूर और तुलसी के काव्य में दिखायी देती है । सूर और तुलसी सगुणोपासक भक्त कवि थे जिन्होंने कबीर की निर्गुण और निराकार साधना के विपरीत सगुण और साकार साधना की प्रतिष्ठा की । उत्तरभारत का यह सम्पूर्ण युग भक्ति-युग के नाम से अभिहित किया जाता है जिसके पूर्वार्द्ध में कबीर और जायसी हैं तथा उत्तरार्द्ध में सूर और तुलसी । गुजरात की परम्परा इसके बिल्कुल विपरीत है । यहाँ की भक्ति-परम्परा के पूर्वार्द्ध में भालण, नरसिंह और मीराँ हैं जिनके [illegible] द्वारा कृष्णभक्ति परम्परा का विकास हुआ जिसकी परिणति हमें दयाराम के काव्य में दिखायी देती है । उत्तरार्द्ध में अखा, नरहरि, गोपाल, बूटिया, मनोहर और वस्ताराम हैं जिन्होंने औपनिषदिक ब्रह्म को अपने ढंग पर अभिव्यक्त किया । अब हम गुजराती सन्तों द्वारा चर्चित विविध विषयों की चर्चा करेंगे :-

<u>ब्रह्मलीला वर्णन :</u> ब्रह्म, जीव, माया, तथा जगत की चर्चा हम पहले कर ही चुके हैं। गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्तों ने अपने इस आध्यात्मिक विषय को अधिक सरस एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए सगुण [illegible] भक्तों की भाँति राम तथा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है किन्तु उनके ये आलम्बन सदैव निर्गुण एवं निराकार के प्रतीक बनकर ही आये हैं । पुष्टि मार्गीय भक्तों ने जिस प्रकार कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है, गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्तों ने ठीक उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष की रास लीला का वर्णन किया ....

है ।[१] तनरूपी मन्दिर में भक्ति रूपी राधा और मुक्ति रूपी यशोदा के साथ ब्रह्म ने जो खेल खेला है उसकी अभिव्यक्ति इन सन्तों ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से की है ।[२] राम और कृष्ण के आलम्बनों को उन्होंने रहस्य के इसी रंगमंच पर उतारा है । अखाकृत ब्रह्मलीला, प्रीतमदासकृत ब्रह्मलीला, कृष्णदासकृत रघुवंशमणि तथा यदुनंदन आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं । इन रचनाओं में सन्तों की आध्यात्मिक उड़ान का पता तो चलता ही है, कल्पना एवं भावव्यंजना की अपूर्व चमत्कृति भी साथ-साथ होती है ।

<u>संत चरित :</u> गुजरात के सन्त कवियों में जहाँ एक ओर ब्रह्मचर्चा की भूख है, वहाँ दूसरी ओर वे सन्तों की महिमा का गान करते हुए भी नहीं अघाते । नाभादासकृत 'भक्तमाल' के आधार पर लिखी गयी मोजाकृत 'संक्षिप्त भक्त कथा' अखाकृत 'संतप्रिया', मुकुन्दकृत 'कबीर चरित' एवं 'मोरध्वज-चरित' महात्म्यराम कृत 'भक्त महिमावली' प्रीतमदासकृत 'भक्तनामावली' तथा प्राणनाथ के शिष्यों द्वारा लिखी गयी वीतक कथाएँ इसी प्रकार की रचनाएँ हैं । गुजरात के सन्तों द्वारा लिखी गयी "चरित गाथाओं में सन्तों की महिमा मुक्तकंठ से गायी गयी है । इनकी यशगाथा में दक्षिण, गुजरात तथा उत्तरभारत आदि सभी क्षेत्रों के सन्तों का समावेश हुआ है । इससे यह प्रतीत होता है कि इनकी भावना पूर्णत: असाम्प्रदायिक, व्यापक तथा

---

१. 'ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा, प्रकृति पुरुष को विविध विलासा ।'
— अखा, 'ब्रह्मलीला' ४ ।

२. 'श्री व्रिंदावन कमल आकारा, कृष्ण राधिका अखंड विहारा,
ताको तेज विविध विस्तारा, सब तन मंदिर खेलनहारा ।'
—प्रीतम, ब्रह्मलीला २३:५४ ।

सर्वतोग्राह्य थी । महत् चरित्रों की अवतारणा में गुजरात के सन्तों की कलम पीछे नहीं रही ।

<u>पौराणिक कथा :</u> सत्रहवीं शती में जहाँ उत्तरी भारत की सगुणधारा भागवत की ओर विशेष रूप से उन्मुख हो रही थी, वहाँ गुजरात की आख्यान परम्परा का समुन्नत रूप हमें प्रेमानंद के काव्य में दिखायी दे रहा था । इधर गुजरात के तद्युगीन सन्तों ने भी अपने वर्ण्य विषय के अन्तर्गत कुछ पौराणिक-कथाओं को स्थान दिया । समर्थरामकृत `ध्रुव चरित, देवा साहबकृत `कृष्ण-सागर` बिहारीदास कृत `कृष्ण बाल-विनोद` आदि ग्रन्थों में इसी प्रकार की पौराणिक कथाओं को समाविष्ट किया गया है । गुजराती में इन सन्तों द्वारा रचित पौराणिक व आख्यानों की एक लम्बी परम्परा मांडण से लेकर छोटम तक मिलती है ।

<u>गुरु महात्म्य :</u> कबीर की भाँति अखा ने भी गुरु को गोविन्द तथा गोविन्द को गुरु कहकर सम्बोधित किया है । इस आधार पर गुजरात के प्राय: सभी सन्तों ने गुरु को जीवन्मुक्त, अवधूत, परमहंस, परमात्मा, सत्गुरु आदि व संज्ञाओं से अभिहित किया है । इन्होंने गुरु-महात्म्य का वर्णन फुटकल पदों के साथ-साथ स्वतन्त्र ग्रन्थों में भी किया है । इस प्रकार के स्वतन्त्र ग्रन्थों में वस्ताकृत 'गुरु गीता,' संतरामकृत `गुरु-बावनी` रवि साहब कृत `गुरु महात्म्य` मोरार साहब कृत `गुरु महिमा` बिहारीदासकृत `गुरु-स्तुति` कुबेरदासकृत `गुरु-महिमा` आदि उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं ।

:२: ध्वंसात्मक वर्ण्य विषय :

अखा, भोजा, धीरा, बापू साहब प्रभृति सन्त यद्यपि कबीर की ही तरह फक्कड़ प्रकृति के थे, फिरभी इनकी हिन्दी वाणियों में वह डाँट फटकार नहीं, जैसी कबीर में है। हाँ, इन सन्तों की गुजराती रचनाओं में इनके व्यक्तित्व का उग्र स्वरूप अवश्य दृष्टिगत होता है। बाह्य कर्म काण्डों एवं थोथे आडम्बर के प्रति इनकी वाणी ध्वंसात्मक रही है। अखा के 'छप्पा', भोजा के 'चाबखा' और धीरा की 'काफियाँ' तूणीर से छूटे हुए तीर की तरह सीधे समाज के मर्मस्थल पर चोट करती हैं। प्रीतम, छोटम और मनोहर के पदों में बाह्याचारों का खण्डन तथा संयम, शील और सदाचार द्वारा आत्म प्रतीति का समर्थन किया गया है। कुबेरदास रचित 'हंस तालेब' और 'स्वाचार पत्रिका' जैसी रचनाओं में बाह्याडम्बरों से बचकर वैराग्य का पूर्ण पालन करते हुए धन, स्त्री, अहं, कामादि मायाजन्य वस्तुओं से दूर रहने पर बल दिया गया है। अर्थात् मन को शुद्ध किये बिना घर छोड़कर साधू बनना, पवन को रोकना, गुफा में रहना, मस्ती में फिरना, नख और जटा बढ़ाना, सिर नीचे रखकर लटकना, मुंडन कराना कंठी और माला पहनकर तिलक और छापा लगाना आदि सब व्यर्थ हैं। अखा के शब्दों में —

'मन रिझावन वेद किया सब, मन रिझावन
चौदह विद्यारी।
मन रिझावन पाट पटम्बर मन रिझावन महल अटारी
मन रिझावन ताप तपे सब मन रिझावन होय ब्रह्मचारी
मनकु भेट मनातीत पावे सो तो अखो केहे गुरुकालन्यारी

—संतप्रिया – १२।

मनोहरदास ने ऐसे 'भांड भवैयाओं' की खुलकर खिल्ली उड़ाई है :—

'मल कलियुग में भांड भवैया,
परम हंस बनी बैठत भैया,
कुत्सित नरकुं कहत कनैया ।...मल०
ब्रह्मविद्या की बात न जानत, सुख्य खत
भुम भननन ठुम ठननन बजैया ।..मल०
तोते जिमि पढ़ी काग की न्याई,
कीवी कीवी कीवी कीवी कीवी की करैया ।..मल०
दूना कंठी गलेमहुं डारिके,
पामर नर के धनही हरैया । ...मल०
मृग जिमि राग रसिक जन आगें,
नादर दानी तुम दर दानी तुम दर दर गवैया
सच्चिदानंद ब्रह्म सें ललटीके,
थनगन थनगन नाच नचैया ।[१] मल०

संक्षेप में, इन्होंने व्रत, तप, जप, सेवा, पूजा, अर्चना, धर्म, कर्म आदि के बाह्याचारों की कटु आलोचना की है । इन सन्तों का उद्देश्य वस्तुत: अकर्मण्य जीवन में ज्ञान का प्रकाश फैलाना था ।

---

१. अ.वा.म.प., पृ.४१५ ।

सामाजिक वर्ण्य विषय :

यह सत्य है कि सन्तों के काव्य का उद्देश्य आत्म प्रतीति, ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष-साधना है, किन्तु समाज के एक अभिन्न अंग होने के नाते इनका काव्य स्वान्त: सुखाय होकर भी लोक-हिताय है । अत: यह लोकजीवन तथा जन साधारण से परे नहीं । इस रूप में गुजरात की संतवाणी पर भी तद् युगीन सामाजिक-जीवन का प्रतिबिम्ब पड़ना स्वाभाविक था । कबीर की तरह अखा का व्यक्तित्व एक उच्चकोटि के तत्त्व-चिन्तक के साथ-साथ समाज-चिन्तक के रूप में भी सर्व मुखर है । इन्होंने अपने छप्पा तथा पदों में समाज के दम्भ, पाखण्ड तथा रूढ़ियों का विरोध कर नैतिक एवं सहज जीवन का सन्देश दिया है । तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब इनकी वाणी में जाने अनजाने झलक उठा है । इन्हें अपने कथन की पुष्टि में दृष्टान्तों को ढूंढने के लिए अन्यत्र भटकना नहीं पड़ा है अपितु लोक-जीवन के अनुभूत एवं प्रत्यक्ष उदाहरणों को ही इन्होंने प्रस्तुत किया है । लौकिक जीवन के ख राग रंग से विरक्त ऐसे सन्तों द्वारा प्रस्तुत इन दृष्टान्तों में हम तद्युगीन सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक व्यवस्था के दर्शन कर सकते हैं । अर्वाचीन सन्तों की वाणी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की इकाई है ।

:१: राजनीतिक व्यवस्था : अखा का काल राजनीतिक अव्यवस्था एवं अंधाधुंधी का समय था । उस समय गुजरात पर मुगलों का शासन था । दिल्ली का सूबेदार प्राय: अहमदाबाद में नियुक्त होता । जहाँगिर, शाहजहाँ और औरंगजेब क्रमश: इस पद पर नियुक्त हो चुके थे । संवत् बत १६७७-७८ के आसपास गुजरात के सूबेदार शाहजहाँ जहाँगिर के विरुद्ध विद्रोह किया था । संवत् १७०० में जब औरंगजेब गुजरात का सूबेदार बना तो उसके

मन में भी अपने भाइयों के विरुद्ध बगावत करने की भावना प्रबल हो उठी । दिल्ली की सल्तन को भोगने की लालसा गुजरात के इन सूबेदारों को बेचैन बनाती रही । गुजरात पर इस राजनीतिक अवस्था का गहरा प्रभाव पड़ा । प्रजा का आन्तरिक एवं बाह्य जीवन दूषित बनता गया । न्यायी एवं नेक मुसलमान शासकों का युग जाता रहा । जनता का विश्वास उखड़ता गया और शासक एवं शासन के प्रति जो श्रद्धा गुजराती जनता में पहले थी, वह अब न रही । जनता को अब जैसे किसी शासक के रहने का विशेष हर्ष-शोक नहीं था ।[1]

भयभीत जनता को अपना विश्वास दिलाकर जोगी, जती और तान्त्रिक कर्मकाण्डों की दुहाई देने लगे थे । इस प्रकार के तान्त्रिकों, फाड़-फूंक कर मन्त्र देने वाले ओझाओं, कथा-श्रवण कर पेट भरने वाले पोंगे पण्डितों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी । अखा ने इन सभी को आड़े हाथों लिया है ।[2]

:२: धार्मिक व्यवस्था : मध्य युग का समस्त गुजराती साहित्य और समाज धर्म की धरती पर फला और फूला था । अतः अखा ने अपनी वाणी में धर्म के नाम पर समाज को दूषित करने वाले 'धन हरे धोखो नव हरे' जैसे दंभी गुरुओं,[3] कर्म से

---

१. 'इस नगरी में ना सुखे सोणा, नित मागे और नित होय रोणा ।
जिस नगरी का राजा नढंगा, सर्व लोक चले 'आप' रंगा ।' – अखो भजन – ६ ।
२. 'माला न पेहूँ न टीका बनाऊँ, शरणे न जाऊँ मैं कोउ किसीका ।
आपा न मेटुं थापा न थापुं, मैं मदमाता हुं मेरी खुशीका ।' — संतप्रिया – ८७ ।
३. 'गुरु थई बेठो हूंसे करी ।' अखा ।

पलायन करने वाले सन्यासियों, कथा भागवत सुनाकर आजीविका प्राप्त करने वाले पुराण पंथियों[1] एवं धर्म की आढ़ में विलासिता का ढोंग रचाने वाले धर्माधिकारियों[2] को अपने 'धरम के कांटे' पर खूब तौला है, सत्य की कसौटी पर इन्हें पूरी तरह कसा है और झूठ का पर्दा हटा कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया है ।

:३: वर्णभेद : वर्ण-भेद की प्रथा यद्यपि नरसिंह मेहता के काल से ही चली आ रही थी, किन्तु अखा के काल में यह अत्यन्त दृढ़ हो चुकी थी ।[3] वर्णाश्रम व्यवस्था के भी छुटपुट दृश्य दिखायी दे जाते थे । देह और चाम को लेकर मनुष्य और मनुष्य के बीच एक गहरी भेदक रेखा खिंचती चली जा रही थी ।[4] लोगों का मानस अत्यन्त संकुचित होता जा रहा था । आन्तरिक एवं बाह्य जीवन से ग्रस्त गुजरात की भोली भाली जनता ग्रहों की दशाओं में विश्वास करने लगी थी ।[5] इसलिए कर्म काण्डियों की पाँचों अंगुलियाँ घी में थीं । वे जैसा विधान बताते भोली प्रजा उसीका अनुसरण कर बैठती । अखा ने इस प्रकार की सामाजिक वर्ण व्यवस्था एवं रूढ़ियों के प्रति घोर विद्रोह किया और ऊँच-नीच, जाति-पाँति, भेदभाव की संकीर्ण दीवारें ढहा कर व्यापक मानववाद का सन्देश दिया.

---

१. 'फूलेशमा नाम वैष्णव धर्यु, शु पयु घेर घेर खातो फर्यै ।'-अखा ।
२. 'व्यास अने वेश्यानी एकज पेर ।'-अखा ।
३. 'जात्य ऊँची हरिना मिले, अनुभव ऊँच हरि भाये,
   जौं लौह में मुख देखिए, अखा कंचन में न दिखाए ।'-अक्षयरस-पृ.७१:१ ।
४. 'वर्णाश्रम जिन देखिया, सो क्यों देखे राम ।
   अखा हरी कैसे मिले, जिन देख्या देह चाम।।' वही पृ.७२:२ ।
५. अ.छप्पा २०२ ।

'ऊँच वर्ण नेड़े नहीं, नीच वर्ण नोहै दूर ।
ज्यों नर लम्बा और ठींगना, कोई छुवत नहीं सूर

सामाजिक जीवन के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए इन सन्तों ने कुसंग, कुप्रथा एवं रूढ़ियों की घोर भर्त्सना की तथा सत्संग, सत्य, समदृष्टि एवं अहिंसा का पाठ पढ़ाया । आकाश की भाँति सत्संग स्वच्छ, कालातीत एवं अभंग है ।[2] इन्होंने मानव-जीवन को सही रास्ते पर ले जाने के लिए सत्संग की बार-बार हिमायत की है :—

'होत राजी बहुत विषय लपटाई के,
बाँधि टेढ़ी पाघ पगे धोती सों किनेरीदार
अंग पर ओढ़ी लेत दुपट्टो रंगाइ के ।
बोले मीठी बात कहे, बहोत शीहानो,
सत्संग में न आवे कबु लोक में लजाई के ।'[3]

—हरीसिंह

:४: नारी भावना : सन्तों ने अपने वर्ण्य-विषय के अन्तर्गत समाज में नारी के उचित स्वरूप एवं पद की भी चर्चा की है । इनके द्वारा चर्चित नारी के प्राय: दो रूप हैं:—

१. कामिनी-रूप ।
२. पतिव्रता-रूप ।

कामिनी रूप : कंचन और कामिनी की घोर निन्दा सन्त परम्परा में अत्यन्त

---

१. 'अजयरस', पृ.२०६:२ ।
२. 'ज्यौं नभ को भंग कबु न थता,
सत्संगी यों काल न लागे लता ।'— महात्यमराम ।
३. 'ज्ञानकटारी'— ६ ।

प्राचीन काल से होती आ रही है । इस परम्परा का श्रीगणेश प्राय: सिद्धों के समय से देखा जाता है । सिद्धों से प्रारम्भ होकर जैन तथा नाथ-कवियों के साहित्य में परिपोषित यह परम्परा उत्तर भारत तथा गुजरात के सन्तों में समान रूपसे दिखायी देती है । गोरखनाथ ने नारी के कामिनी-रूप की निन्दा की है ।[1] कबीर में नारी निन्दा का उग्र स्वरूप दृष्टिगत होता है ।[2] इन्होंने नारी के भोग प्रधान स्वरूप की कड़ी आलोचना की है । सुन्दरदास के अनुसार नारी का शरीर एक भयानक सघन जंगल के समान है जहाँ भाँति-भाँति के भयानक एवं घातक जीव निवास करते हैं ।[3] ध्यान देने योग्य बात यह है कि नारी के गुण दोषों की चर्चा स्त्री संत कवयित्रियों में कहीं भी दिखायी नहीं देती। कबीर की भाँति अखा और प्रीतम ने भी स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि परमेश्वर के पथ में अविद्या रूप नारी एक भय है ।

`परमेश्वर के पथ में, नारी डर चौपास,
कहे प्रीतम अध बीच से, उडावे आकास ।।`

—प्रीतम[4]

नारी का भौतिक प्रेम तीनों काल में मनुष्य के लिए दुखरूप है जबकि वह उसे सुख की खान समझता है ।[5] नारी के इस भोग, मांसल सौंदर्य एवं आकर्षण से बचने के लिए इन्होंने अपनी साखियों

---

१. गोरखबानी, पृ.७, ५८ ।
२. संतबानी संग्रह, पृ.१५७ ।
३. `कामिनी की देह मानों कहिये सघन बन, उहाँ कोऊ जाइ सु तौ भूलि कै वस्तु है । कुंजर है गति कटि केहरि को भय जामैं, बेनी काली नागनीऊ फन कौं धरतु है।`
सुन्दरदास ।
४. प्री.वा, पृ.१३५:१३ ।
५. नृसिंह वाणी विलास, भाग २, पृ.२२२ ।

मैं 'चेतावनी अंग' अथवा 'नारी निंदा को अंग' आदि की विशिष्ट योजना भी की है ।

<u>पतिव्रता रूप</u> :- प्रायः सभी सन्तों ने जहाँ एक ओर नारी के भोगमय एवं वासनाजन्य स्वरूप की आलोचना की है, वहाँ दूसरी ओर उसके कल्याण कारी स्वरूप की प्रशंसा भी की है । कबीर ने अपनी साधना की तुलना पतिव्रता के आदर्शों से की है । नारी के इस सती रूप को उन्होंने बड़े आदरभाव के साथ देखा है :-

'साधू भीख न मांगई जो मांगै सो भांड,
सती न पीसै पीसना जो पीसै सो रांड ।।'

गुजरात के सन्तों में दादू, अखा, प्रीतम, छोटम, रवि साहब, नृसिंहाचार्य प्रभृति सन्तों ने समाज में पतिव्रता नारी के आदर्शों की प्रतिष्ठा, प्रशंसा एवं वन्दना की है । पतिव्रता नारी के संयम, शील एवं सदाचारों पर चलने की इन्होंने सदैव हिमायत की है । उदाहरणार्थ —

'साचो स्नेह व्रजनार को, छोड़ चली परिवार,
कहै प्रीतम पियाकु मिलि, गावत गुण संसार ।'
—प्रीतमदास ।

०० ०० ००

'साच सती और निज भक्त दोनुं की एक टेक ।
तन मन कुं पहेलुं दिया अब को करे विवेक ।।'
—अखा ।

गुजरात के सन्तों में नारी के आदर्शों के प्रति उनकी उच्च भावना का एक कारण शक्ति-पूजाका प्रभाव भी माना जा सकता है। गुजरात के नारी-जीवन में शक्ति-उपासना का विशेष महत्त्व है। शक्ति-साधक न होने पर भी गुजरात के कुछ सन्तों ने शक्ति की आराधना में अनेक उच्च-कोटि के गरबों की रचना की है। नृसिंहाचार्य के विचार इसीलिए शाक्त-मत के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। इन्होंने दाम्पत्य-जीवन की प्रतिष्ठा में नारी महत्त्व की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट कहा है कि स्त्री जाति की निंदा धर्म के रहस्यों से विमुख कर देती है।

इन सन्तों ने समाज द्वारा नारी पर होने वाले अत्याचारों को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। उसे उन्होंने 'नारायणी' की संज्ञा से अभिहित भी किया।

:५: <u>आर्थिक जीवन :</u> समाज की आर्थिक दशा का चित्रण गुजरात की सन्त-वाणी में मिलता है। इनकी रचनाओं में प्रयुक्त ऐसे प्रतीकों से यह प्रतीत होता है कि मध्ययुग में गुजरात का आर्थिक संगठन व्यवस्थित रहा होगा गुजरात में उस समय हीर अथवा हीरागल रेशमी वस्त्रों की बुनाई और कसब के कसीदों का प्रचलन विशेष रूप से था।[१] अखा ने अपने एक छप्पा[२] में 'दुमास' शब्द का प्रयोग किया है जिससे यह प्रतीत

---

१. अ.छ. ८३, १७० ।

२. वही १७२ ।

होता है कि दमास्कस का कीमती वस्त्र भी यहाँ आयात होता था । बेची जाने वाली वस्तुओं को दुकानों पर खूब आकर्षक ढंग से सजाने का प्रयत्न किया जाता था ।[1] विदेशों के साथ जलमार्ग से खूब व्यापार होता था क्योंकि अखा ने जहाज चलाने वालों का अनेकश: निर्देश किया है ।[2] सूरत और खंभात उस समय के प्रमुख बन्दरगाह थे । मण्डी का व्यापार उधार और रोकड़ दोनों रूपों में चलता था ।[3] व्याज का धंधा भी उस समय खूब जोरों पर था ।[4] धन के सम्बन्ध में लोगों का विश्वास प्राय: एक दूसरे पर कम था । स्वयं अखा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध जनश्रुति है कि अखा की धर्म-बहिन तक अखा की ईमानदारी पर शक कर बैठी थी । चीजों में भेल सेल : मिलावट : भी होता था जैसाकि अखा ने स्याही में नील के पानी को मिलाने की बात कही है —

'आप कोई और उपासन और ज्युं,
नील का नीर मसीमध्य साने ।'[5]

खेतों में काम कराने के लिए मजदूरों को रोज पर रखा जाता था ।[6] अखा ने बेगार ढोने वाले मजदूरों का भी उल्लेख किया है ।[7] पशुपालन यहाँ का विशिष्ट व्यापार था । उदंड जानवरों के गले में लटकता हुआ डंडा : डहेरो : बांध दिया जाता था ।[8] अधिक परेशान करने वाले जानवरों को अंधेरे में बांध कर छोड़ दिया जाता था ।

---

१. अ.छ. २०६ ।
२. वही १३६, १४८, २४४ ।
३. वही ८२ ।
४. 'अखा नोय व्याज छूटा पखे ।' अ.छ.
५. 'संतप्रिया' १८ ।
६. अ.छ. १६३ ।
७. वही १६२, १६३, १६५ ।
८. वही २१३ ।

:६: <u>मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद के साधन :</u> मुगल काल वास्तु, नृत्य, संगीत और चित्रकला का स्वर्ण युग था । गुजरात के जैन देरासरों और मुस्लिम शासकों द्वारा बनायी गयी जुम्मा मस्जिदों में गुजरात की वास्तु-कला के एक से एक ऊँचे नमूने देखे जा सकते हैं । कच्छ एवं भुज के महारावों ने काव्य-कला के साथ-साथ संगीत एवं नृत्य कला को विशेष प्रश्रय दिया । गुजरात की चित्रकला भी अपने ढंग की अनूठी है । गुजरात की सन्त वाणी में जिन विशिष्ट कलाओं का उल्लेख हुआ है, वे ये हैं :—

१. नाट्य-कला ।
२. नृत्य-कला अथवा रास ।
३. चित्र-कला ।
४. वास्तु-कला ।
५. संगीत-कला ।

मनोहर, गवरीबाई और अखा की वाणी में 'नाटक'[1] 'भांड' और 'भवाई'[2] शब्दों का अनेक बार उल्लेख हुआ है । इसके अलावा उनकी वाणी में रास,[3] चित्रकारी आदि के भी अनूठे वर्णन मिलते हैं । भीत पर चित्रकारी करने का उल्लेख अखाने ब्रह्मलीला में किया है ।[4] गुजरात के गाँवों में अब भी यह परम्परा जीवित है । आमोद-प्रमोद के अन्य साधनों में चामखेड़ा का खेल : पुत्तलिका नृत्य:

१. 'सदा सर्वदा नाटक माया'— ब्रह्मलीला' ५:१ ।
२. 'भल कलियुग में भांड भवैया ।'—मनहर पद ।
३. 'ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा'—ब्रह्मलीला ४:१ ।
४. 'जैसे भीत रची चित्रशाला, नाना रूप लखे ज्यों विशाला ।'—ब्रह्मलीला ४:१ ।

बन्दरों का नाच, आतिशबाजी का उल्लेख विशेष रूपेण मिलता है। मद्यपान, अफीम, सुल्फा, गाँजा और तम्बाकू के सेवन का उल्लेख भी यत्र तत्र मिलता है।[1] इनके द्वारा उल्लिखित कुछ स्वादिष्ट मिठाइयों के नाम इस प्रकार हैं —

पौआ, पेड़ा, बतासा, मुंगदल, कचौड़ी, पूरी, फरबा इत्यादि।[2]

वेशभूषा एवं आभूषणों के विशिष्ट नाम इस प्रकार मिलते हैं : —

किनारीदार धोती, साडी पटोला, कंचुकी रत्नमाला, चुडीला, दुपट्टा, वेसर, कर्णफूल, टीलडी, दामिनी, राखड़ी :रखा:, पहुँची, नेपुर, वांकला, आंगला, टोपी, पाघड़ी, टोड़ा, कंदोरा, घुघरी का कड़ा इत्यादि।[3]

इनकी वाणी में सूचित संगीत के विभिन्न वाद्य— यन्त्रों के नाम इस प्रकार हैं : —

झांझ, पखावज, करताल, मृदंग, डफ, मंजर, मुचरंग अथवा मुरचंग, ददामा, अथवा दमामा, निसाण, सहनाई, खंजरी, सारंग, बांसुरी, नगारा, नौबत, उपलंग आदि।[4]

---

१. अ.छ., ११६, २५२।

२. 'गवरी कीर्तनमाला', कीर्तन—५६१।

३. वही

४. देखिए 'भँवरी कीर्तनमाला' तथा 'मीरां की पदावली'।

निष्कर्ष यह कि सन्तों का काव्य विषय की दृष्टि से आध्यात्मिक एवं सामाजिक चेतना का काव्य है । सन्तों की सृजनात्मक शक्ति ने आत्म ज्ञान के साथ-साथ मानव-मूल्यों की भी रक्षा की है । इनके काव्य में समाज का वह दर्शन है जो हमें प्राय: इतिहास के पृष्ठों में ढूंढने पर नहीं मिलता । समाज की सड़ी-गली मान्यताओं एवं रूढ़ियों को मिटाकर इन्होंने जिस व्यापक मानवतावाद का सन्देश दिया उसीकी अभिव्यक्ति इन्होंने अपने काव्य के अन्तर्गत की थी । इनके काव्य में सर्वत्र शाश्वत जीवन का सन्देश है ।

प्रतीक विधान :

अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रिया-कलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है ।[१] प्रतीक-योजना के अन्तर्गत दो बातें विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं —

१. विभिन्न अनुभूतियों या संवेदनाओं के बीच चुनाव करने की प्रक्रिया का ज्ञान ।

२. इन अनुभूतियों को प्रभावित करने वाली सांकेतिक वस्तु का चयन ।

यद्यपि प्रतीकों के माध्यम से प्राय: सूक्ष्म एवं विशिष्ट अनुभूतियों को सहज ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है जैसाकि कबीर आदि की आध्यात्मिक अनुभूति की प्रतीक-योजना में दिखायी देता है, तथापि अनुभूत जीवन तथा परिचित एवं ज्ञात सिद्धान्तों के निरूपण में भी प्रतीकों की योजना हृदय स्पर्शिता एवं चमत्कारिकता

---

१. 'काव्य शास्त्र' डॉ.भगीरथ मिश्र । पृ.२९४ ।

के हेतु की जाती है । रहस्यवादी कवियों ने जहाँ अव्यक्त को व्यक्त करने में विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया है, वहाँ व्यक्त को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लोकजीवन के सामान्य प्रतीकों की संयोजना भी की है । परिचित, घरेलू, सरल, मार्मिक एवं स्पष्ट प्रतीकों के माध्यम से इन्होंने अपनी वाणी को लोक भोग्य बनाने का प्रयत्न किया है । गुजरात की हिन्दी सन्त वाणी में प्राय: दो प्रकार के प्रतीकों की संयोजना हुई है :—

१. पारिभाषिक प्रतीक ।
२. भावात्मक प्रतीक ।

१. पारिभाषिक प्रतीक :

पारिभाषिक प्रतीकों के अन्तर्गत कुछ ऐसे सांकेतिक, संख्यामूलक एवं रूपकात्मक प्रतीक हैं जो परम्परागत हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो सन्तों की पारिभाषिक शब्दावलि में अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं और जिन्हें हिन्दी को उनकी नवीन देन कहा जा सकता है । उदाहरण के लिए 'सैन-गैन', 'अकल-कला', 'अगलिंगी', 'मीन-कला', 'अन्तर-रस', 'गोविन्द-रस' 'अजयरस' आदि इसी प्रकार के पारिभाषिक प्रतीक हैं, जिनका प्रयोग गुजरात की सन्तवाणी में अपने ढंग पर इतस्तत: हुआ है । ऐसे पारिभाषिक प्रतीकों की स्पष्टता परिशिष्ट-३ के अन्तर्गत की गयी है । रूपकात्मक प्रतीकों में सांग-रूपकों की संयोजना में ये सन्त सिद्ध हस्त हैं । 'ज्ञान कटारी',[१] 'ज्ञान घटा'[२] 'भजन भड़ाका',[३] 'तन तंबूरा',[४] 'ज्ञान हुक्का'[५] कुछ ऐसे ही सांगरूपक हैं जिनमें इनकी कल्पना शक्ति एवं

---

१. देखिए हरिसिंहकृत 'ज्ञान कटारी' १३ ।
२. 'अजयरस' पृ.
३. 'प्रा.का.मा.', भाग २४, पृ.१६७:३ ।
४. 'छोटमवाणी' भाग १, पृ.१४४ ।
५. 'परिचित पद संग्रह', पृ.२५३, पद १८ ।

चमत्कार वृत्ति का परिचय मिलता है ।

२. भावात्मक प्रतीक :

पारिभाषिक प्रतीकों की अपेक्षा गुजरात की हिन्दी सन्त वाणी में भावात्मक प्रतीकों की प्रचुरता है । ये प्रतीक क्योंकि हमसे चिर परिचित हैं अत: अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं । ऐसे भावात्मक प्रतीक प्राय: तीन प्रकार के हैं :

१. रहस्य मूलक भावात्मक प्रतीक ।
२. प्रकृति मूलक भावात्मक प्रतीक ।
३. जीवन व्यवहार मूलक भावात्मक प्रतीक ।

रहस्यमूलक भावात्मक प्रतीक : अखा की जकड़ियों में ऐसे रहस्यमूलक भावात्मक प्रतीकों की भरमार है । इसी प्रकार रवि साहब, प्रीतमदास, छोटम, अनवर प्रभृति सन्तों ने ऐसे अनेक प्रेममूलक एवं दाम्पत्य प्रतीकों को ग्रहण कर नीरस आध्यात्मिक भावना को सरस बनाया है । रीति युगीन कवियों ने जिस दाम्पत्य जीवन का वर्णन किया है उससे वासना ही उद्दीप्त होती है, किन्तु सन्तों में जिस दाम्पत्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है वह नितान्त पुनीत, रसमयी एवं अलौकिक है ।

अखाने तो स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि प्रेम का नाग जब काट लेता है तो संसार के कटु अनुभव भी मीठे हो जाते हैं ।[१] बस, इसके 'नूर' के साथ निकाह करने की आवश्यकता है । इस मार्ग में

---

१. 'अखाकृत भूलणा' ८० ।

पढ़ाई लिखाई सब बेकार है । जिसे 'सूफ' नहीं 'पिया' उसीसे दूर है और जिसने उसे 'दिल के दीदे' में देखा है, वह जरूर निहाल हो गया ।[1] पढ़ लिखकर पंडित की पदवी धारण करने वाला उस 'बाँफ के फूल' की तरह है, जिसमें कभी 'फल' लगता ही नहीं ।[2] वस्तुत: गुजरात की निर्गुण वाणी का काव्यत्व ऐसे ही प्रेम रूपकों में निखर उठा है । इनके दाम्पत्य प्रतीक माधुर्य भाव के सुन्दर नमूने हैं । उदाहरण के लिए—

'अबहु न निकसे प्राण कठोर ।... टेक
दरसन बिना बहुत दिन बीते,
सुन्दर प्रीतम मोर ॥१॥
चारि पहर चारों जुग बीते,
रैन गंवाई मोर ॥२॥
अवधि गयी अजहुं नहिं आये,
कतहुं रहे चित चोर ॥३॥
कबहुं नैन निरख नहिं देखे,
मारग चितवत चोर ॥४॥
दादू ऐसे आतुर विरहिणि,
जैसे चंद चकोर ॥५॥[3]

गुजरात के सन्तों द्वारा रहस्यवाद की अभिव्यक्ति इसी प्रकार के प्रेम रूपकों द्वारा हुई है । इन प्रेम प्रतीकों में आत्मा की परमात्मा से मिलने की छटपटाहट, एवं तीव्र भाव व्यंजना है, किन्तु इस तलमलाहट में प्रिय मिलन का अगाध विश्वास

---

१. अखाकृत फूलणा १०३ ।

२. 'भण्या गण्या पंडित हुआ, भया बांफ का फूल,
फूल थयुं [illegible] फल ना थयुं, एही भण्या मां भूल ।' निरांत ।

३. आश्रम भजनावली ।

भी है । इनकी सम्पूर्ण साधना का महल विश्वास की नींव पर ही खड़ा हुआ है । प्रेम के कठिन मार्ग पर चलकर इन्होंने वस्तुप्रतीति कर ली है ।[१] ब्रह्म के प्रति इनका अगाध विश्वास जाग उठा है —

'साचा साजन मेरा रे ।
तुज आवत गया अँधेरा रे । साचा०
जब आया मुज लाला रे ।
पाया प्रेम का प्याला रे ।
तब नौखंड भया उजाला रे,
साचा साजन मेरा रे ।'[२]

जिसने पूनम का चाँद एक बार देख लिया, वह दूज तीज को क्यों गिनने लगा ?[३] उस चाँदनी की चकाचौंध में इनकी आत्मा 'हरि' को हेरते हेरते स्वयं हैरान हो जाती है । अखा पर भी कबीर की भाँति 'लाल की लाली' का रंग चढ़ चुका है

'हरिकुं हेरता रे, सखी मैं रे हेराणी ।
सरितालीन भली रे, सिंधु कुवा हुलर पाणी ।
ज्युं घनसार पवन को पावत, ताकी सूरत समाणी,
ऐसा मगन भयो मन मेरो, कोई बुझे गुरुगम ग्यानी ।
ज्युं अँधेरो अर्क देखतां, गई निज देह बिलानी,
प्राप्त वस्तु अखा कहे ऐसी, संगत मई है प्रानी ।'[४]

मिलन की मार्मिक अनुभूति गुजरात के सूफी कवियों में भी देखी जा सकती है । इनकी मर्मानुभूति का एक उदाहरण देखिए —

---

१. 'सूई नाका तें सांकड़ा, अखा । हरि का दवार,
पण ताके मन मेदान है, जिनुं पाया वस्ते विचार ।' साखी सहेप शक्ति को अंग २६
२. अखाकृत जकड़ी ६ । ३. अखाकृत फूलणा ११ ।
४. 'गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ' डा. अम्बाशंकर नागर पृ.१३२ ।

'बालम मोको अब ना छूओ
मोरी सुरख चुनर मुरझाय ।
सीने पै मोरे ना मारो पिचकारी,
अंगिया को दाग लग जाय ।'
अनवर[१]

सूफियों की इस प्रकार की शैली का प्रभाव गुजरात के विशुद्ध ज्ञानवादी सन्तों पर भी पड़ा है । अखा की जकड़ियों पर इसी शैली का प्रभाव है । 'घूरत मीत सलूना' और 'मेरा ढोलन ढलकर आया'[२] में ठीक इसी प्रकार की भाव प्रवणता है जैसी अनवर तथा अन्य सूफी सन्तों में परिलक्षित होती है ।

<u>प्रकृतिमूलक भावात्मक प्रतीक :</u> सन्तों की चेष्टा बहिर्मुखी न होकर अंतर्मुखी विशेष रही है अतः उनके काव्य में विशुद्ध प्रकृति चित्रण नहीं उतर पाता । इन्होंने प्रकृति के माध्यम से अन्तर्मुखी भावना को अभिव्यक्त किया है । गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी में ऐसे कतिपय उदाहरण मिलेंगे जिनमें प्रकृतिमूलक भावात्मक प्रतीकों की संयोजना आध्यात्मिक निरूपण में की गयी है । यहाँ पर ऐसे प्रकृतिमूलक कुछ प्रतीकों को उद्धृत करना समीचीन होगा :—

वर्षा वर्णन :

:१: 'बरषत अनुभव उमग्यो सावन ।।
जल थल होय रह्यो सब हरिया,
लागे लेत सोहावन ।।' नाथभवान ।[३]

---

१. 'मेरा ढोलन ढलकर आया रे, हूं दूधे धोवूंगी पाया रे, मेरा ढोलन ढलकर आया रे ।' अखाकृत जकड़ी–१० ।

१. अनवर काव्य, पृ. १८४ ।

३. 'विष्णुपद–५ ।

:२: 'ज्ञान घटा चढ़ आयी अचानक,
ज्ञान घटा चढ़ आयी।' -अखा।

वसन्त वर्णन :

:१: 'आयो है फागुन मास, खेलो खेल आतम आपमें हो
नाहि दुर्यो आतम के आगे, मत भटको बन कुंज।'
०० ०० ००
अंध धंध आतम बिन जानो, देखी गाओ धुमारुप,
बारो मास बसन्त अखो कहे, आपमें आपको पार।
—अखा[1].

:२: 'फागुन के दिन चार, होरी खेल मना रे,
बिन करताल पखावज बाजे, अणहद की झनकार रे
बिन सुर राग छतीसों गावे, रोम रोम रंग कार
सील संतोष की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे
—मीराँबाई[2].

हेमन्त :

: 'हेम हंकार गर्यो तापन थे,
जब प्रकट्या ते संत।
रत्य पलटी अकोर ओर सब,
म्यला है सद्गुरु संत।।
मन-पवन उड़त सुख-कारी,
सीतल मन्द सुगन्ध
नैन कमल विकसे विध्यविध्य के,
भागा भरम में धंध।।' —अखा[3].

---

१. 'अक्षयरस' पृ.१० ।
२. 'मीराँबाई की पदावली' पृ.२४५ ।
३. 'अक्षयरस' पृ.११ ।

शरद :

'हमें भी मौसमें सरमायें गस्त होता है,
सनम के कूचे में हरबार हमने खाई ठंड,
जो देखा मस्त हमें ठंड ने सरे बाज़ार
शराबे इश्क की मस्ती से खुद लजाई ठंड ।'
— अनवर[1].

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन सन्तों ने प्रेम के प्रभाव को, आध्यात्मिक खुमारी को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । साथ ही, नीति और उपदेश की चर्चा भी कहीं-कहीं प्रकृति के विविध प्रतीकों के सहारे की है ।

जीवन-व्यवहार मूलक भावात्मक प्रतीक : गुजरात के अनुभव-सिद्ध इन मर्मी कवियों द्वारा चुने गये अधिकांश प्रतीक ऐसे हैं, जो जीवन व्यवहार के हैं । कबीर ने जिस तरह चादर, चरखा, चक्की, हाट आदि अनेक प्रतीक दैनिक जीवन से चुने हैं, उसी तरह गुजरात के सन्तों ने भी घरेलू जीवन से सम्बद्ध अत्यन्त निकट के प्रतीकों का प्रयोग किया है । चरखा, कैला, देवळ, गरबा, रास, खम्म, हुक्का, संडसी, तरकारी, तराजू, खलका :कुरता: आदि इसी प्रकार के प्रतीक हैं । इनमें से कुछ दृष्टव्य हैं :—

१. 'अनवर काव्य' पृ.२५४ ।

शरीर के प्रति :

१. 'तन हुक्को घट घट स्वामी बोलतो जो,
प्रथम चलम चतुराई साफ करी जो,
कूड कपट तमाकु माहि मरी जो।'
—बापू साहब गायकवाड़।

२. 'तन बंगले का किया कठमणाजी,
साई तो कारीगर न्यारा है।'
—रविसाहब।

३. 'काया गरबो रे सदगुरु जी घडियो।'
—रविसाहब।

४. 'तेरा तन तंबुरा बड़ा,
तुंबा हाड़ चाम से मढ़ा।'
—खींटम।

५. 'खलको खूब बनायो, मेरे सतगुरु,
खलको खूब बनायो।'
—अनवर।

६. 'तरकारी बज्यारकी रही घर दी च्यार,
एसो काया सब अखा, मन राखे तुं प्यार।'
—अखा।

मनके प्रति :

१. 'अंबुज सी आनंना अति आछी,
मन मधूप पाये विरामा।
भाव भगति भरोसो सोनारा,
भूधर की ठोर भई है ज्युं माया।'
—अखा संतप्रिया : १५।

२. 'यह मन कागद की गुडी,
उड़ि चढ़ि आकाश ।
दादू भीगे प्रेम जल,
तब आइ रहे हम पास ।।'
—दादू, संतबानी संग्रह, पृ.६४ ।

नश्वर जीवन के प्रति :

१. 'जावत है सब लोक यहाँ थे,
आवत नाहि जन कोई फरी,
राय राना से बड़े भट पंडित
कोई न दे पठ्यो पतरी ।'
—अखा, 'संतप्रिया' ३७ ।

२. 'जैसी घन की बादुरी घरी पलक की छाँहि ।
इत चढ़े उत उतरे, अखा ऐसी काय ।।'
— अखारस, पृ.२५१:८ ।

क्षणिक यौवन के प्रति :

१. 'ओस को नीर यह तन-धन-जोबन,
ज्युं घन में बिजली मुसकानी ।'
—अखा, 'संतप्रिया' १५ ।

२. 'क्या जुल्फोंदा ताव समारे,
घास मूस उड़ जावेगा ।
जोबन चंद रोज का चटका,
देखत ही दुरि जावेगा ।'
—मनोहर ।[१]

१. म.प., पृ.६२ ।

घृणित बुढ़ापे के प्रति :

'फटे से नैन दसन बिन बैन,
एसो फबै जैसो ऊजर-खंजर ।'
—अखा, 'संतप्रिया' – ६१ ।

आत्म प्रतीति :

१. 'चटकीसु हत उतमै, जैसे दाडी तोल,
आत्म अनुभव बिन अखा, ऐसे जीव अदोल ।'
—अखा ।[1]

२. 'आत्म अनुभव बिन अखा, नहीं ठरन की आग,
साडसी ज्युं लोहार की, छणु पाणी छणु आग ।'
—अखा ।[2]

सारांशतः पारिभाषिक, रहस्यमूलक, प्रकृतिमूलक एवं जीवन व्यवहारमूलक प्रतीकों की योजना गुजराती संतों की मौलिक विशेषता है । इन प्रतीकों में जहाँ ज्ञानमार्गी विचार सरणि एवं परम्परा का निर्वाह है वहाँ हृदय की उर्मियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी है, जिनमें आध्यात्मिकता के साथ साथ काव्यात्मकता भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । साहित्यिक दृष्टि से संतवाणी का यह अंश निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है ।

---

१. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ' पृ.१२६:८२ ।
२. वही पृ.१२६:८३ ।

भाषा :

यह सच है कि सन्तों ने जितना महत्त्व अनुभूति पक्ष को दिया है, उतना कलात्मक सौंदर्य को नहीं, फिरभी इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इनकी अभिव्यक्ति किसी माने में कमजोर साबित हुई है। संतों की अनुभूति जहाँ लोकजीवन के साहचर्य में पनपी है, वहाँ इनकी अभिव्यक्ति का स्वरूप लोकवाणी के अधिक निकट है। भाषा का बंधाबंधाया रूप इन्हें ग्राह्य नहीं था अपितु सरिता के जल के समान जो मन को उत्फुल्ल कर सके, इन्हें ऐसी भाषा की आवश्यकता थी।[1] प्रह्लाद और ध्रुव ने पिंगलशास्त्र का कब अध्ययन किया था और कबीर तथा नामदेव किस दिन व्याकरण पढ़े थे ?

`कब ध्रु प्रह्लाद पींगल पढ़े, कब व्याकरण नामा कबीर ।
भक्ती पैल गये अखा, सब संतन के पीर ।।[2]

कबीर की भाँति अखा ने भी भाषा के सम्बन्ध में कहा है कि — `भाषारूपी हथियार से क्या होता है ? शूरवीर तो वह है [redacted] जो रण में पराक्रम दिखाकर विजय प्राप्त करे।`[3] गुजरात के इन सन्तों ने अपने मत का प्रचार प्रायः वैष्णव आचार्यों के विरुद्ध संस्कृत भाषा में न करके लोकभाषा में करना अधिक उपयुक्त समझा।[4] अपनी वाणी को बोधगम्य एवं लोकभोग्य बनाने के लिए इन्होंने सर्वत्र सरल भाषा का ही प्रयोग किया है तथा व्याकरण के शिष्ट-रूपों की कभी परवाह नहीं की। हिन्दी के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन में गुजरात के

---

१. `संसकीरत है कूप जल भाषा बहता नीर` — कबीर ।
२. `अक्षयरस, पृ.२०९:५ ।
३. `भाषा ने शुं वळगे भूर, जे रणमां जीते ते शूर ।` — अखा ।
४. `संस्कृत बोले ते शुं थयुं, कांई प्राकृतमां थी नासी गयुं ।` — अखा ।

भाषा की दृष्टि से इन्होंने

ऐसे मूक सेवियों ने हिन्दी का घर-घर अलख जगाया ।[१] विविध प्रयोग किये हैं । इनमें से कुछ दृष्टव्य हैं :—

ब्रजभाषा :

'कहत अखो कैसी कहूँ, जीव ब्रह्म की बात ।
कोटि कलप लो जो जिपत, तोहु विषे न अघात ।।'
—अखा ।

'गरीबनिवाज मैं गरीब तेरो,
प्रणतपाल दयाल गुरु देवा,
राखो चरन-शरन को चेरो ।
द्वार पड्यो रहुं मैं दर्शन पाऊँ,
जूठ ही पाऊँ, रहूँ निनैरो ।'
—मोरार साहब ।

'मो सम कौन अधम अज्ञानी,
हम हम के बस प्रभु नहिं हेरो
भयो देह अभिमानी ।'
—निर्भय ।[२]

खड़ी बोली :

'एक दिन भारत यह सब सरताज था,
जिस जमाने में यहाँ पर राज था ।'
— मुरार ।[३]

'तेरी अक्ल से भूलके दीदार गमाया,
दुनिया में बढ़ा बनके चला धूल कमाया ।'
—मनोहर स्वामी ।[४]

---

१. 'बसती में रैना, मांगी के खाना, घरोघर अलख जगाना मेरे लाल ।'
—त्रिकम साहब ।

२. 'निर्भय के पद' अ.म.मा., पृ.१४३ ।

३. 'भजनसागर', पृ.६१८ ।

४. 'अ.वा.म.प., पृ.४१२ ।

'अले सो आप विचार देखा, मुजको जीव अवल कहाँ था ?
सूरत सो साईं सहेज सहेज पुंज कीनी, जाणपणा दीया आप माहा ।
जीसम ईसम भि तेरडा है, इसमें मेरा क्या लागे ?
एन इशारत इतनी है, जो सुनते मीने जाल लागे ।'

—अखा ।[1]

'ये दुनियाँ के लोग कीड़े मकोड़े,
गेहूँ शहद पर दौडते घोडे ।
डूबते बहुत निकलते थोड़े ।'

—सैयद शाह हाशिम ।

फारसी :

'एकादरी मुतलक तु तुई, दादार जहानी,
दानी तो हमेरा तलुरानी जतो दानी ।
आलम हमे नाबूद जतो बूंद नु मायद,
हर मुरदेरा तो मेकुनी जी रूह वफानी ।'

—मनोहर स्वामी ।[2]

उर्दू :

'फिर दोबारा इश्क का दिल पर असर पैदा हुआ,
बाग़ में तेरे मुहब्बत का शजर पैदा हुआ ।'

—रमजानअली ।[3]

'नहीं का अब नहीं है वक्त, दो बोसा कि जाँ निकले
दमे आखिर है इस दम तो, सितमगर मुंह से हाँ निकले ।'

—वहीद ।[4]

---

१. 'अखाकृत फूलणा' ५५ ।
२. 'अ.वा.म.प.', पृ.४१३ ।
३. 'भजनसागर' पृ.६४६ ।
४. वही पृ.७०७ ।

राजस्थानी :

'सद्गुरु साहेब सई कर्याने,
प्रेम ज्योति प्रकाशी । ...टेक
अखण्ड जाप आयो आतमरो,
कटी काल री फासी ।।'
—भाण साहेब [१]

'प्रभुजी थे कहाँ गया नेहड़ा लगाय ।। टेक ।।
छोड़्या म्हां विश्वास संगाती ;
प्रेमरी बाती जलाय ।।'
—मीराँबाई

'पढ़ पढ़ने क्या सोच बाँधे,
गाम नहीं तो सीम कैसी ?
राहा उपरछला होवे,
करम साईंका, सो मान लेसी।'
—अखा ।[२]

पंजाबी :

'फूलाहुंदी सेज विछावता, कलीए कलियुं नाहंदा,
सोही जमीन पर लोटन लाग्या, केकर कोण बहाईंदा ।'
—रवि साहब ।[३]

'हो काना किन गूंथी जुल्फा कारियाँ ।'
—मीराँबाई ।[४]

'क्या जुल्फोंदा ताव समारे' ।
—मनोहर ।[५]

'हूँ हैरत गई हैराई, अजब गति तेरियाँ ।
तुं मनसा, वाचा काय, गली शून्य मेरियाँ ।'—अखा ।

---

१. 'र.भा.मो.वा.' पृ.५ । २. 'अखाकृत फूलणा' १०६ ।
३. वही पृ.२२ । ४. 'मीराँबाई की पदावली' पृ.१४६ ।
५. 'मनहर पद' पृ.६२ ।

सिन्धी :

'हालु असां जो लाल रे, तोसे सब मालूम रे,
मभे समां मभे बरा अला मभे लागी बाहिरे ।'

—दादू ।

कच्छी :

'स्वारथ तां सौ को करे, परमारथ करे न कोय,
हथो छडे मसाण में, कुवाडो छडेड न कोय ।'

—मेकनदादा ।

'नीचर्थे नीच वैसा कुल हीना,
जात बरन रुपे चतुराई ।'

—अखा ।

मराठी :

'मूल स्थानीं मिउ बंध बांधों,
हो जोई ना काल कलाई ।
गुरु वचने उठियाना दृढ़ बंधाई, ।
जे वीना चंचल नाहीं ।'

—चक्रधर ।

'जुजतो के ओशिज दे बिकुलद बंदेचे चारे ।

—मनोहरदास ।

गुजराती :

'हद बेहद अनहद गति आवी, कर्म विनानी काया ।
कर्म धर्म नी भ्रमणा भागी, एक लालन सै लैहे लाया ।
अबला हुता सो सबला कीधा, लखिया फेर लखाया ।'

—मोजा ।

'वृन्दावन की सुन्दर शोभा, कैसी कहुँ सजनी रे लोल,
सुंदर फुल्यो आसो मास, निरमली रजनी रे लोल।
सुंदर फुले सरद रत शोभा, सोहामणी रे लोल,
फुले सोल कला संपुरण, ससी तणी रे लोल।

०० ०० ००

फुले धीर समीरे यमुना, सुंदर सोहामणी रे लोल,
फुले सुंदर व्रिज की भोम, फगमग कंचन [illegible] कली रे लोल।'

—गवरीबाई।

गूजरी :

गुजरात के सन्तों ने, ब्रजभाषा, खड़ी बोली के अतिरिक्त एक ऐसी विशिष्ट शैली में भी रचनाएँ की हैं जो खड़ी बोली और उर्दू के बीच की कड़ी है। यह वही भाषा है जिसे हिन्दवी, रेख्ता, दखिनी तथा गूजरी नामों से अभिहित किया गया है। मुसलमानी सल्तनत की सरपरस्ती में गुजरात के अनेक शहरों में अरबी फारसी और उर्दू के मदर्से कायम हुए तथा गुजरात सूफी-पीर और औलियाओं का प्रमुख केन्द्र बना रहा। परिणाम स्वरूप हिजरी ६०० से गुजरात में सूफी सन्तों की वाणी उपलब्ध होने लगी। ऐसे सन्तों में शाह अलीजी गामधनी, बहाउदीन बाजन, संत शेख शकू, मोहम्मद अमीन, खूब मुहम्मद चिश्ती, वली, खालस आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा परम्परा ही 'गूजरी' के नाम से पहचानी जाती है जिसका अनुसरण सूफी प्रभाव वाले परवर्ती सन्तों ने भी किया है।[१] यहाँ 'गूजरी' के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :—

'पाँचों वक्त नमाज गुजारूँ दायम पढ़ूँ कुरान,
खावो हलाल बोलो मुख साचा, राखो दुरुस्त ईमान।'

—काजी महमूद दरियावी।

---

१. देखिए 'अध्यरस' : 'भूमिका' : आ. कुंवरचन्द्रप्रकाश सिंह, पृ.७८।

'जिन्हों घर झूलते हाथी, हजारों लाख थे साथी,
उन्होंको खा गई माटी, तू खुशकय नींद क्यों सोया ।'

—खालस ।

'कहीं सो मजनू हो बरतावे,
कहीं सो लैला हो दिखावे,
कहीं सो खुसरो शाह कहावे,
कहीं सो शीरीं होकर आवे ।'

—शाह अलीजी गामधनी ।

गुजराती सन्तों द्वारा प्रयुक्त विविध भाषाओं एवं भाषा — शैलियों का परिचय प्राप्त कर चुकने के पश्चात् अब हम उन कवियों की हिन्दी वाणी की सामान्य प्रकृति का व्याकरण एवं भाषा शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करेंगे ।

विशिष्ट शब्द प्रयोग :

भाषा की दृष्टि से गुजरात की समस्त सन्तवाणी का परीक्षण करने पर हमें यह प्रतीत होता है कि संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग उसमें बहुत कम हुआ है, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों की भरमार है । उदाहरणार्थ —

तद्भव शब्द :

तद्भव	तत्सम
....	....
करमना[1]	कर्मणा
रुदय, रुदा, रदा[2]	हृदय
पुरजन[3]	पुनर्जन्म
परनालिका[4]	प्रणालिका

१. 'मनसा वाचा करमना, हरि न भजे जिया जान्य ।' अखा, संतप्रिया १० ।
२. 'रे मन राम रुदे न पहचान्यो तुं ।' अखा, संतप्रिया १५ ।
३. 'पिंड पर सो मोह पायो, पुरजन ताते भयो ।' अखा, ब्रह्मलीला ४:५ ।
४. 'अखा, ये परनालिका, पार नर तत्क्षण पावे ।' अखाकृत कुंडलिया ५ ।

तद्भव	तत्सम
रात्य[1]	रात्रि
पोर[2]	प्रहर
मर्णा[3]	मरण
व्रेह[4]	विरह
दृष्ट[5]	दृष्टि
खमिया[6]	क्षमा
सुन[7]	शून्य
परचा[8]	परिचय
सासा[9]	संशय
सुमरन[10]	स्मरण
निराना[11]	निर्वाण
कारज[12]	कार्य

१. 'चंदकला ज्युं देह है, पुरा तपै एक रात्य ।' — अखा, 'अक्षयरस' पृ.२५१:१०।
२. 'नाम नगारो गड्गड़े, अनहद आठे पोर ।' — प्रीतमदास ।
३. 'नाम सुधारस पीजिए, जन्म मर्णा भय जाय ।' वही ।
४. 'साचो व्रेह व्रनार को, छोड़ चली परिबार ।' वही ।
५. 'कहे प्रीतम एक आतमा, ज्ञान दृष्ट करि जोय ।' प्री.वा., पृ.१११ ।
६. 'खमिया खड्ग हाथ लइ खेलुं ।' — दासी जीवण ।
७. 'सत शब्द की लगन खुमारी, सुन शिखर सुरता मेरी ।' — रवि साहब ।
८. 'परिब्रह्म के परचे खेलुं, करूँ टेल सत सबूरी ।' — रवि साहब ।
९. 'जनम मरण का सासा मिटिया, अमर जुगोजुग जीया ।' — रविसाहब ।
१०. 'शांत सुभाव सुमरन सेवा, गुरुगम पुरना पान ।' — मोरार साहब ।
११. 'अगम अगोचर अद्‌भुत लीला, नेतिनेति निगम निराना रे ।' वही ।
१२. 'मृग त्रस्नावत आ जुग जाणो, यातें कारज सीजे ।' — गवरीबाई ।

तद्भव	तत्सम
तँत [1]	तत्त्व
जम [2]	यम
बंभा [3]	वंध्या
नेह [4]	स्नेह
आतम, [5] आतमा [6]	आत्मा
रत [7]	ऋतु
गोठडी [8]	गोष्ठी

देशज शब्द :

छाना [9]	चुप बैठने के अर्थ मैं ।
कजिया [10]	झगड़े के अर्थ मैं ।
ढीमर [11]	पनिहारिन अथवा कहारिन ।
उधाई :उधइ: [12]	दीमक ।
छन्नारे [13]	ऊसर जमीन ।

---

१. 'तँत कर टोपी, सत कर छापु, मनकु मुंडन करले रे जोगी ।' —गवरीबाई ।
२. 'जम का अजब तमासा वे, तन की कैसी आशावे ।' —मनोहर ।
३. 'सुपने पुत्र मुवा बंभा का, वे रोइ रोइ अंतर तपना ।'—छोटम ।
४. 'ऋतुराज वसंतहि आयो, निज ताथ से नेह बढ़ायो ।' वही ।
५. 'आतम छोड़ चला जब हंसा, कौन सरूप सो कहाँ समाया ।'—मोरार ।
६. 'सोहं साचे आतमा हो मेरे प्यारे, सत्चिद् आनंद रूप ।'—छोटम ।
७. 'सुंदर फुले सरद रुत शोभा, सोहामणी रे लोल ।'—गवरीबाई ।
८. 'गोठडी मारे गोविन्द साथे, प्रीत प्रभुजी से लागी रे ।' वही ।
९. 'सो क्यों छाना होइगा, जो रे कहेगा राम ।'—दादू बानी भाग-१ पृ.२७।
१०. 'कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहिं कजिया ।'—दीनदरवेश,संतकाव्य पृ.४३७ ।
११. 'काल जाल ढीमर नहीं, ना बिछुरन वियोग ।'—अखा सहेज शक्ति को अंग-२३ ।
१२. 'ज्यु उधाइ खात काष्ट,मलीआगर होत तैसे ।'—अखाकृत कुंडलिया-३ ।
१३. 'ऊगे त्यां तो कबहु न बावे, छन्नारे बीज जाप बोता ।'—रविसाहब ।

विदेशी शब्द :

तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों के अतिरिक्त गुजराती सन्तों द्वारा विदेशी शब्दों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है । विदेशी शब्दों में प्रधानता अरबी, तुर्की एवं फारसी शब्दों की है । अखा, मनोहर, निरांत और अर्जुन ने इस प्रकार के शब्दों का अपनी रचनाओं में छूट से प्रयोग किया है ।

अखा की कुछ रचनाओं में अरबी फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग देखकर यह संदेह होने लगता है कि ये अखाकृत हैं या नहीं । उदाहरणार्थ 'संतप्रिया' तथा 'मूलखा' एवं 'जकड़ी' पदों की भाषा में पर्याप्त अन्तर है । इस संदेह का समाधान एक अनुमान के आधार पर हो सकता है । वह यह कि जहाँ अखा ने अजातवाद के आधार पर ब्रह्म विषयक रचनाएँ लिखी हैं वहाँ पर उन्होंने विषयानुकूल सन्तपरम्परानुमोदित भाषा का प्रयोग किया है और जहाँ उन्होंने सूफियाना रंग में साजन, ढोलन, मीता आदि के प्रति प्रेमोल्लास व्यक्त किया है, वहाँ सूफी सन्तों की भाँति उनकी भाषा में इश्क, आशिक, माशूक, आब, नूर, हकीकत, इसम आदि शब्द सहज ही आ गये हैं । उदाहरण के लिए :

१. 'गैन नफर को गैर है रे ।'[१]
२. 'किरतार आगे कबूल पड़ी ।'[२]
३. 'शरीअत की हैड है हीरों की ।'[३]
४. 'खलल है रे खुदाई मीने ।'[४]
५. 'यकसान के महल में एक सपना था ।'[५]

---

१. 'अखयरस' पृ.५६:४ ।
२. वही पृ.५६:५ ।
३. वही पृ.४८:१२ ।
४. वही पृ.५८:१५ ।
५. वही पृ.५६:१८ ।

इसी प्रकार जाहिर, आरिफ, गाफिल, मरद, कुदरत, हुक्मियत, खतरा, क्यास, बारीक, तारीफ, हैवान, इन्सान, इशारत, मज़हब, दीदे, दाम, खुशबो, अर्श, वहम, हकीकत, इश्क, माशूक, आशक, आतश, खाक, नूरत, करामत, दरियाव, आब, खावन्द, पैवंद, फकीर, मदार, तकब, जिसम, इसम, मलामत आदि ऐसे शब्द हैं जिनसे ज्ञानी सन्तों की सूफी-विचारधारा की प्रतीति होती है ।

विशिष्ट कारक रूप :

गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी में कुछ विशिष्ट कारक-प्रयोग हमारा ध्यान सहज रूपेण आकर्षित करते हैं । ऐसे प्रयोग गुजराती भाषा की प्रकृति के अनुरूप प्रतीत होते हैं । उदाहरणार्थ :-

१. 'अन्य उपाय कारन नहिं उरे ।'[१] :हृदय में:
२. 'अपने बले उड़त ज्युं पंखी ।'[२] : बल पर :
३. 'नाचन गावन थे राम न रीझत ।'[३] : गाने से :
४. 'पाप पून्य थे हम न्यारा ।'[४] : से :

विशिष्ट अव्यय-रूप :

कारकों की भाँति विशिष्ट अव्यय-रूप भी गुजराती की भाषा प्रकृति के अनुरूप गढ़े गये प्रतीत होते हैं । ऐसे प्रयोग संतवाणी में दूध में शर्करा की भाँति घुल-मिल गये हैं । उदाहरणार्थ :—

---

१. 'संतप्रिया' पृ.१६७।४३:२ ।
२. 'अखाकृत पद' पृ.४०:५ ।
३. 'संतप्रिया' १०३:१०४ ।
४. 'निराँत काव्य ।

गुजराती	हिन्दी
त्यारे	तबे [१]
ज्यारे	जबे [२]
अने	ने [३]
त्यां लगी	तब लगी

विशिष्ट क्रिया-रूप :

गुजरात की हिन्दी सन्त वाणी में जहाँ विशिष्ट कारक एवं अव्यय-रूप मिलते हैं, वहाँ क्षेत्रीय बोली अथवा भाषा की प्रकृति पर गढ़े गये विशिष्ट क्रिया-रूप भी उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे कतिपय क्रिया-रूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं :—

१. अभस्यो [४] अभ्यास किया ।
२. अनुभव्यो [५] अनुभव किया ।

शब्द-विकार अथवा ध्वनि परिवर्तन :

१. अल्पप्राण का महाप्राण :—

जैसे :— सयाना शीहानो [६]
सकूं शकु [७]

२. महाप्राण का अल्प प्राण :—

जैसे :— समावेश समास [८]
प्रहर पोर [९]

३. आकारान्त :—

जैसे :— जंतर जंता [१०]
अंतर अंता [११]

---

१. `जब उर अंतर में आप स्ववस्तु, ढिग नहीं माया तबे ।` ब्रह्मलीला १ ।
२. `अन्य नहिं उच्चार करिवे, स्वस्वरूप होहीं जबे ।` वही ।
३. `दो ने दस तो फूट रहे, ने मुगत हुआ है मन ।` संतराम कृत गुरु बावनी पृ.३ ।
४. ब्रह्मलीला । ५. `अखाकृत छप्पा । ६. हरिसिंहकृत ज्ञान कटारी । ७. निरांत काव्य
८. `संतप्रिया` । ९. `प्रीतमदास नी वाणी पृ.६३९ । १०. `ब्रह्मलीला` । ११. `ब्रह्मलीला` ।

४. ओकारान्त :— खुदा खोदा[१].
मुवन मोवन[२].

५. उकारान्त :— तीनों तीनु[३].
हमको हमकु[४].
सबको सबकु[५].

६. अन्तर्हित :— सहारा सारा[६].
अहंकार हंकार[७].

७. आगम :— स्थान अस्थान[८].

८. व्यंजन लोप :— लहै ली[९].
नहीं नी[१०].
बाहर बार, बारा[११].

९. स्वर लोप :— दृष्टि दृष्ट[१२].
विरह व्रेह[१३].
मरण मर्ण[१४].

---

१. 'अब कैसे तारे सबको खोदा, अखा कहे भजन की जात्य न जानी ।'
२. 'स्वर्ग मोवन का भोग'—अ.सा., क्री अंग-१५ ।
३. 'सहज भोग करि सुत तीनु जाया ।' 'ब्रह्मलीला' २ ।
४. 'अगर चन्दन की चिता जलाऊँ, हमकु गैल बताजा'।—मीराँबाई ।
५. 'साँई का मिलने का तो सबकु, लगे प्यारा ।'—बापू साहेब,प्रा.का.मा.भाग ७ पृ.९
६. 'ये तनके कोई मत रहो सारा रे'—अखाकृत जकड़ी १ ।
७. 'हम हंकार गरयो ता धन ते ।'—अखा ।
८. 'हर मेरे हंसा चालो निज देशा, ज्यां अमर पुरुष अस्थाना रे ।'—मोरार ।
९. 'समज्या तेणे ली वाली'—संतराम ।(१०)'मैं मानु नी रे,मै भेदन परिहार'।रविसाहब ।
११. 'लूणकी पुतली गिर गयी जलमां, क्युं कर निकसे बारा ।'—रविसाहब ।
१२. 'केहे प्रीतम एक आतमा, ज्ञान दृष्ट करी जोय ।'—प्री.वा., पृ.१११ ।
१३. 'साचो व्रेह व्रजनार को, छोड़ चली परिवार ।'—प्री.वा.पृ.२२१ ।
१४. 'राम सुधारस पीजिए, जन्म मर्ण भय जाय ।'—प्री.वा.पृ.६४० ।

१०. नवीन शब्द प्रयोग :

`सोहागन` के आधार पर `दोहागन`

`चले दोहागन रोती नारी ।
सबको कहे वे अनाथ बिचारी ।`

अखाकृत जकड़ी-३७ ।

मुहावरे और कहावतें :

भाषा को घरेलू एवं मुहावरेदार बनाने के लिए गुजरात के हिन्दी सेवी सन्तों ने अपनी भाषा में कुछ रूढ़ प्रयोग भी किये हैं । माडण कृत `प्रबोध बतीसी` तथा अखा के `छप्पा` गुजराती कहावतों की खान हैं । इन सन्तों की हिन्दी — वाणी भी ऐसे अनेक मुहावरे और कहावतों से सुसज्जित है । यहाँ पर इनके द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरे तथा कहावतें दृष्टव्य हैं :—

१. `क्या कोई कहेवे ? समुझे कैसा ?
हथ कंकन को दर्पण जैसा ।`[1] —अखा ।

२. `गूंगे की गत गूंगा जाने,
समज समज मुस्काई ।` रविसाहब ।

३. `अंधा अचानक नैन पायो` ।[2] अखा ।

४. `कहा भयो दूध जैसी छाछ की गोरी ।`—अखा ।[3]

५. `हंस कला गुरु देवे सोनारा,
न्यारा रहे दूध पानी का पानी ।`—अखा ।

---

१. अप्रसिद्ध अक्षयवाणी पृ.२०१ ।
२. `ब्रह्मलीला` चौ.८:१ ।
३. `संतप्रिया` ५६ ।

६. 'आपकु अधिक जानी, और की तु हासी करे,
काही को मरत सूते साप को जगाइ के।'
—हरिसिंह।[१]

७. 'जैसा दाणा भू मैं बोया,
तैसा फिरने टोचे सोह्या।' —अखा।[२]

८. 'आपकी सर्ब बात और की न मावे देखी,
आपकु अधिक मानी मूछ मुरडाइ के ।'
—हरिसिंह।[३]

९. 'त्रिविक्रम हाथी पै बैठके, कौड़ी का मंगना सीख्या।'
—त्रिविक्रमानंद।[४]

१०. 'बोये बबूल के बीज ताकुं, अब फल कहाँ से पावे रे।'
गवरीबाई।[५]

निष्कर्ष :

गुजराती सन्तों के भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन अहिन्दी भाषी सन्तों ने यद्यपि विविध भाषाओं : पंजाबी, सिन्धी, कच्छी, मराठी, राजस्थानी : का प्रयोग किया है तथापि उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम मुख्यतया गुजराती से प्रभावित ब्रज एवं खड़ी बोली का मिला-जुला रूप है। गुजराती सन्तों की भाषा वस्तुतः सन्त टकसाल की सधुक्कड़ी हिन्दी का ही गुजरात में

---

१. 'ज्ञानकटारी' – १७।
२. 'अखाकृत जकड़ी' – ३५।
३. 'ज्ञानकटारी' – १८।
४. 'त्रिविक्रमानंद' पद-२९६।
५. 'गवरी कीर्तनमाला' पृ.१५३, पद ३४७।

प्रचलित एक विशेष रूप है जिस प्रकार कबीर की भाषा में पूर्वीपन, दादू की भाषा में राजस्थानीपन और नानक की भाषा में पंजाबीपन दृष्टिगत होता है उसीप्रकार अखा, प्रीतम, धीरो आदि गुजराती सन्तों की भाषा में [illegible] गुजरातीपन उनकी भाषा की निजी विशेषता है । इन सन्तों की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि हिन्दी न तो इन सन्तों की मातृभाषा थी और न इन्होंने उसका विधिवत् अध्ययन ही किया था । उसका ज्ञानार्जन उन्होंने सत्संग, देशाटन एवं संतवाणी के श्रवण कीर्तन के माध्यम से किया था । अतः जो लोग इनकी वाणी का अध्ययन ब्रजभाषा अथवा खड़ीबोली के व्याकरण की दृष्टि से करना चाहेंगे उन्हें कारक, वचन, क्रियापद, शब्दप्रयोग, वर्तनी आदि की बेशुमार भूलें दिखायी देंगी, किन्तु जैसाकि पहले ही कहा चुका है कि सन्तों ने कभी व्याकरण के बन्धनों को स्वीकार नहीं किया है, उन्होंने तो जन साधारण के अनुकूल बोधगम्य भाषा में आध्यात्मिक एवं सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की है और इसके लिए जहाँ उन्हें प्रस्तुत भाषा अक्षम एवं अपर्याप्त प्रतीत हुई है वहाँ उन्होंने अपनी अनुभूति के अनुकूल नये शब्दों, प्रयोगों, प्रतीकों, मुहावरों, कहावतों आदि की सृष्टि करके भाषा के क्षेत्र में अपनी मौलिक सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है । इस दृष्टि से सन्तवाणी की ये भूलें उनकी भाषागत वैशिष्ट्य ही प्रतीत होती हैं ।

अलंकार :

आचार्य भामह सबसे पहले अलंकारवादी थे जिन्होंने अलंकार को काव्य शोभा का आधायक तत्त्व बताया ।[1] दण्डी[2] और वामन[3] प्रभृति आचार्यों ने तो निर्भ्रान्त रूप से यह प्रतिपादित

१. रूपकादिरलंकारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः ।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम् ।। का.लं. १।१४ ।
२. काव्यादर्श, २।१ ।
३. रस-मीमांसा, पृ.२६५ ।

कर दिया कि अलंकार सौंदर्यमात्र को कहते हैं । इस प्रकार काव्यशोभा के जो भी निष्पादक हुए वे सभी 'अलंकार' शब्द के वाचक बन गये । हिन्दी के रीतियुगीन तथा आधुनिक आचार्यों में केशवदास, चिन्तामणि, गोप, रसिक सुमति, भिखारीदास, रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. नगेन्द्र आदि ने काव्य में सौंदर्य, रमणीयता एवं उच्च कल्पना के सर्जन के लिए अलंकारों का महत्त्व स्वीकार किया है । अलंकारों से अर्थ में प्रैषणीयता प्रभविष्णुता और स्पष्टता का सम्पादन होता अवश्य है, किन्तु काव्य में अलंकारों का औचित्य वहीं तक है जहाँ तक वे साधनरूप में ही प्रयुक्त हुए हों । वे साध्य न बन जायें । वस्तुतः अलंकारों की योजना काव्य के लिए हो, काव्य अलंकारों के लिए न हो जायँ ।

रीति-कालीन कवियों की भाँति संतों ने अलंकारों का दुराग्रह कदापि नहीं रखा । इनकी बानी में जहाँ कहीं अलंकार दीख पड़ते हैं, वे प्रयासजन्य न होकर अनायास योजना के परिणाम हैं । संतों की भाषा में अलंकारों की योजना नितान्त स्वाभाविक ढंग से हुई है । बिल्कुल कवच कुंडलधारी कर्ण की तरह, जिनका चमत्कार अपने आप दमक उठा है ।

गुजरात की समग्र संतवाणी में प्रायः दो प्रकार के अलंकारों का विशेष महत्त्व है —

१. गूढ़ आध्यात्मिक सिद्धान्तों को सरल, स्पष्ट, आकर्षक एवं बोधगम्य बनाने के लिए दृष्टान्त, उदाहरण एवं रूपकों की योजना ।

२. संधाभाषा, पारिभाषिक शब्दावली एवं पूर्ववर्ती सन्तपरम्परा के पोषण में विरोधमूलक तथा अन्य अलंकारों की योजना ।

उपर्युक्त कथन के आधार पर अब हम गुजरात की हिन्दी [redacted].सन्तवाणी से कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे —

१. रूपक :

इसका शाब्दिक अर्थ है एकता अथवा अभेद की प्रतीति । अर्थात् रूपक सादृश्यगर्भ अभेद प्रधान आरोपमूलक अर्थालंकार है, जिसमें अति साम्य के कारण प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप करके अभेद दिखाया जाता है ।[1] रूपक की प्रमुख दो विशेषताएँ हैं—

१. उपमेय की उपमान से एकरूपता ।
२. गुणों की समानता ।

रूपक के प्राय: तीन भेद कहे जाते हैं — :१: सांग रूपक । :२: निरंग रूपक । :३:परम्परित रूपक । प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का सांग आरोप सांग रूपक, अंगी का आरोप निरंग रूपक और एक आरोप में अन्य आरोप का कारण परम्परित कहलाता है ।

गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्तों ने रूपकों के माध्यम से ब्रह्म, जीव, माया एवं जगत विषयक अनुभूति की रसात्मक अभिव्यक्ति की है । भावना के आवेश में उन्होंने जिन रूपकों की योजना की है, उनमें सर्वत्र मौलिकता, विविधता एवं व्यापकता का निर्वाह हुआ है । उदाहरणार्थ —

अस्थि मास मालो कियो, तामें पंखी प्राण ।
काल अहेड़ी सिर भमे, प्रीतम चेत अजाण ।।-प्रीतमदास

ज्ञान दीप वैराग शशी, जोग अरक सम मास,
उदय अस्त साधन सकल, भक्ति मणी रविदास ।-रविसाहब ।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृ.६६७ ।

प्राण सरोवर सुरति जइ अ्रल भोमि तरमाहि ।
रस पीवे फूले फलैं, दादू सूखे नाहिं ।।—दादू

जिस प्रकार कबीर,[१] मलूकदास[२]; सुन्दरदास[३]; यारी साहब[४]; बुल्लासाहब[५]; चरनदास[६]; आदि उत्तरभारत के सन्तों द्वारा प्रधानतया चादर, चरखा, कुँभार, हाट, हंस, होली, मछली आदि के सुन्दर सांगरूपकों की योजना हुई है ठीक उसी प्रकार गुजरात के ज्ञानमार्गी संतों में अखा, धीरा, छोटम, निरांत, रविसाहब, मनोहर, करक और हरिसिंह आदि ने घटा, घर, देवल, फौज, कामधेनु, कटारी, भंग जैसे सुन्दर एवं मौलिक सांगरूपकों की अवतारणा की है । अमानुषी वृत्तियों के दमन में ऐसे रूपकों की योजना इन सन्तों की विशिष्ट देन है । उदाहरण के लिए सन्तों द्वारा योजित कुछ रूपक देखिए —

'पीओ कोई ज्ञानघूंट के भंग,
लगे तब गजपति से रंग ।
तन कर कूंडी मन कर सोटा,
शुद्ध-बुद्धि जल गंग ।
ओहं सोहं का रगड़ लगाके,
प्रेम प्रीत प्रसंग ।
काली मिरची ममता पीओ,
विषय — वासना संग ।
सार असार साफी में छानो,
आतम तत्त्व अभंग ।
करक लहर ये गुरु दयाकी,
चढ़े न दूजो रंग ।' करक[७] ।

---

१. कबीर, पृ.६२ आ.हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
२. 'संतबानी संग्रह भाग २, पृ.१०० ।
३. वही पृ.१०७ ।
४. वही भाग १, पृ. २० ।
५. वही भाग २, पृ.१७० ।
६. वही भाग २, पृ.१८५ ।
७.परिचित पद संग्रह , पृ.७४,पद २ ।

सुल्फा, गांजा, भंग आदि ऐसे पेय पदार्थ हैं जो सामाजिक दृष्टि से हेय समझे जाते हैं। सन्तों ने भंग रूपी ज्ञान की तरंग अथवा ज्ञान गांजे की कली के ऐसे रूपक खड़े किये जो सामाजिक उत्कर्ष के परिचायक तो थे ही कल्पना की दृष्टि से भी ये मौलिक बन पड़े हैं। कटारी तथा फौज, घटा आदि के रूपक भी इसी कोटि के हैं जिनमें सन्तों ने आत्म प्रतीति, स्वसंवेद्य ज्ञान तथा आत्मशुद्धि का बोध कराया है—

'करो भड़ाका भजन का, मनसा वाचा मुख मोड़,
क्षमा खड़ा कुं खैंचकर, फौज कुफर की तोड़ ,
फौज कुफर की तोड़, लुट ले तबु डेरा,
मोह राजा को मार, देख जमरा का चैरा,
धरम दया की ढाल पकड़ कर शबद भड़ाका,
कहै धीर धर ध्यान, भजन का करो भड़ाका।'
—धीरा।[1]

'ज्ञानघटा चढ़ि आई अचानक ज्ञानघटा चढ़ि आई,
अनुभवजल बरखा बड़ी बुंदन, कर्म की कीच रेलाई।
दादुर मोर शबद संतन के, ताकी शून्य मिटाई,
चहुदिश चित्त चमकत आपनपो दामिन सी दमकाई।'
—अखा[2]।

'शुद्धहि विचार सो पोलाद की कटारी करी
गुरु ज्युं लुहार पासे लीजिए घडाइ के,
घड़ी भले घाट याकु, अग्नि माहि ताती करी,
प्रेम रूप पानी वाकु दीजिए चढ़ाइ के।'
हरिसिंह।[3]

---

१. 'प्रा.का.मा.भाग २४, पृ.१६७:३।
२. 'अक्षयरस', पृ.६८, पद ११।
३. 'ज्ञान-कटारी' —१३।

इस प्रकार के सांग रूपकों के अतिरिक्त इन सन्तों के दाम्पत्य परक प्रेम-रूपकों में अभिव्यक्ति विशेष हृदय-ग्राही एवं चोटदार बन पड़ी है। ऐसे प्रेम रूपकों का सम्बन्ध उनकी रहस्यानुभूति से है। इन रूपकों में सन्तों की घनीभूत पीड़ा है और है मिलन की खुमारी। अखा[1]; प्रीतम[2]; रविसाहब[3]; और गवरीबाई[4]; की वाणी में ऐसे रूपकों की प्रचुरता है।

२. दृष्टान्त तथा उदाहरण :

जहाँ दोनों सामान्य या दोनों विशेष वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है, वहाँ पर दृष्टान्त अलंकार होता है। तथा ज्यों, जैसे आदि वाचक शब्द लग जाने से उदाहरण अलंकार माना जाता है।[5]

गुजरात की सन्तवाणी में दृष्टान्त तथा उदाहरण अलंकारों की प्रचुरता है। इसका एक कारण यह भी है कि इन्हें अपनी दुरुहतम दार्शनिक अनुभूतियों को लोकभोग्य स्पष्ट एवं रोचक बनाने के लिए विविध दृष्टान्तों की योजना करनी पड़ी है। जीवन के विविध पहलुओं से इन्होंने विविध दृष्टान्तों का चयन किया है। इन दृष्टान्तों में व्यापार साम्य और गुण साम्य तो मिलता ही है, उपमान, उपमेय तथा साधारण धर्म का बिंब-प्रतिबिंब भाव भी झलकता है। इस प्रकार की अलंकार-योजना में सन्तों की सूक्ष्म दृष्टि तथा उनकी गूढ़ व्यंजना शक्ति का परिचय मिलता है। यहाँ दृष्टान्त तथा उदाहरण अलंकारों के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

---

१. 'अखाकृत भजन' ५, ३०, जकड़ी ७,८,१०, १२ से १४।
२. 'प्रीतमकृत साखी ग्रन्थ' बिरह अंग, ७ से ६।
३. 'र.मा.मो.वा, पृ.३१, पद ३०।
४. 'गवरी कीर्तन माला' पृ.२१२, पद ४४७।
५. 'काव्य शास्त्र' डा.भगीरथ मिश्र, पृ.१६२।

दृष्टान्त :

'आसामुखी अभागिया जो घर फूले गजराज,
दधीचि पै जाचक भया, अखा देख देवराज ।।'
—अखा ।[१]

'अखा आतुरते मिले, राम रतन भंडार,
जहाँ विभीष लच्छना, तहाँ कर्म व घनसार ।।'
—अखा ।[२]

'वापी, कूप, तड़ाग के नीर भिन्न नव होय,
कहे प्रीतम एक आतमा, ज्ञान दृष्ट करि जोय ।'
—प्रीतमदास ।[३]

'ऊँच नीच की भक्ति कुं, ऐब काढ़ो मत कोय,
चंदन बावल अग्नि कुं, मिलते एकता होय ।'
—अखा ।[४]

उदाहरण :

'जैसे तोता ख्याल करत ही, लकड़ी फिरत उलटायो,
पाँव न छोड़त भय की लीने, आपहि आप बंधायो,
तैसें निज स्वरूप सैंउलटी विषय वृत्ति पर धायो,
चार खाण मैं भटकत भटकत अजहुं न पेट भरायो ।'
—मनोहर ।[५]

'सो कथते बदते देखिए, कहे सुने गुनग्राम,
ज्युं अजा कंठ पयोधरा, अखा न आवे काम ।'
—अखा ।[६]

---

१. 'अ.सा.' लंपट अंग – १२ ।
२. वही आतुरता अंग – ८ ।
३. 'प्री.वा.', पृ.१११:१२ ।
४. 'अ.सा.', समदृष्टि अंग – १।
५. 'अ.वा.म.प.', पृ.४०६, पद–५८ ।
६. 'अ.सा.', लंपट अंग – ३ ।

'जैसी घन की बादुरी, घरी पलक की छाँहि ।
इत चढ़ै उत उतरै, अखा ऐसी काय ।।'
— अखा ।[1]

'जैसे दोर चढ़त है नटणी,
ताको बाँस अधारा,
ब्रह्म—खेल कठिन है तैसे,
जे चढ़ना निरधारा ।'
—अखा ।[2]

'जनम मरण सो संत मिटावे,
जैसें मिटे रोग औषध सें ।
जड़—चैतन्य मैं रह्यो है पूरी,
जैसें वास पुष्प के मध सें ।
एही अदृष्ट जाने गुरु ज्ञानी,
ज्युं विष परखे नील विविध सें ।'
— रत्नो भगत ।

'ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा,
प्रकृति पुरुष को विविध विलासा,
जैसें भींत रची चि त्र शा ला,
नाना रूप लखै ज्यों विशाला ।'
अखा ।[3]

---

१. 'अ.सा., [redacted] हेरान अंग ८ ।
२. 'अखाकृत भजन' २३ ।
३. 'ब्रह्मलीला' ८ ।

३. उपमा अलंकार :

उपमा की श्रेष्ठता और महत्त्व का प्रतिपादन संस्कृत आचार्यों में प्रायः सभीने किया है । राज शेखर के अनुसार उपमा सम्पूर्ण अलंकारों में शिरोभूषण के समान काव्य की सम्पत्ति है और कविवंश की माता के समान है ।[१] रुय्यक ने इसी प्रकार 'अलंकार-सर्वस्व' में उपमा को सम्पूर्ण अलंकारों का बीजरूप कहा है ।[२] उपमा अलंकार वहाँ होता है जहाँ पर किसी वस्तु की रूप गुण सम्बन्धी विशेषता स्पष्ट करने के लिए दूसरी परिचित वस्तु से, जिसमें ये विशेषताएँ अधिक प्रत्यक्ष हैं, उसकी समता कही जाती है ।[३] गुजरात के सन्तों द्वारा योजित उपमाएँ अत्यन्त मनोहारी एवं रमणीय बन पड़ी हैं । उनकी हिन्दी वाणी से कुछ उपमाएँ दृष्टव्य हैं —

'जाने बिन नर आप भुलायो, फिरत ज्यों बैल बगायो ।'
—मनोहर ।[४]

'मृग जिमि राग रसिक जन आगे,
नादर दानी तुम दर दानी तुम दर दर गवैया ।'
—मनोहर ।[५]

'जोबन जात देर नहिं लागत, ज्यों मोती को पानी ।'
—मनोहर ।[६]

'मुरली नागरनंद ज्यु तारन बिच चंद,
नाचत है मंद मंद, सुंदर सोहाइ,
खंजन से चपल नयन, लजत है कोटि चंद,
निरखत मन भयो चैन, शोभा सुखदाइ ।'
—गवरीबाई ।[७]

---

१. 'अलंकारशिररत्नं सर्वस्वं काव्य सम्पदाम् । उपमा कविवंशस्य मातैवेतिमतिर्मम ।'
२. 'अलंकार सर्वस्व' पृ.२६ ।
३. 'काव्य शास्त्र', डॉ. भगिरथ मिश्र, पृ.१७७ ।
४. 'श्र.वा.म.प., पृ.४०६, पद ५८१।
५. 'श्र.वा.म.पद, पृ.४१५ ।
६. वही पृ.४०८ ।
७. 'गवरी कीर्तनमाला' पृ.१०१, पद २२५ ।

`चँदकला ज्यु देह है, पुरा सपै एक रात्य,
चौदस परवा संग है, अखा समभ ले बात ।`
—अखा ।[1]

`अंबुज-सी अंगना अति आछी,
मन—मधूप पाये विरामा,
भाव—भगति भरोसो सोनारा,
भूधर की ठौर भह है ज्यु मामा ।`
—अखा ।[2]

४. <u>विभावना :</u>

संस्कृत अलंकाराचार्यों ने विभावना कारणांतर की कल्पना किये जाने पर मानी है । आचार्य मम्मट के अनुसार क्रिया :हेतुरूप: के बिना कहे ही जहाँ फल प्रकट हो जाय अथवा जहाँ हेतुरूप क्रिया का बिना कथन किये ही उसके फल का प्रकाश किया जाय वहाँ `विभावना` समभनी चाहिए ।[3]

ब्रह्माभिव्यक्ति में सन्तों ने जहाँ संधाभाषा का प्रयोग किया है, वहाँ उनकी वाणी में विभावना अलंकार की अवतारणा सहज ही हो गयी है । उन्होंने जहाँ बिना प्राणों के सांस लेने, बिना पाँव के चलने, बिना जल के बरसने, बिना सूर्य के प्रकाश फैलाने, बिना सीपी के मोती पैदा होने का वर्णन किया है वहाँ पर विभावना अलंकार विद्यमान है ।[4] गुजरात के सन्तों की अगम-वाणी, संधाभाषा और ब्रह्म के विवेचन में हमें विभावना अलंकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । प्रस्तुत अलंकार के प्रयोग

---

१. `अजयरस` पृ.२५२ : १० ।
२. `संतप्रिया` १५ । ३. देखिए—`काव्य निर्णय` पृ.३३३ । सं. डॉ. सत्येन्द्र ।
४. `देखिए — `हिन्दी सन्त साहित्य` डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृ.१३० ।
[illegible]

मैं इन सन्तों ने जो शैली अपनायी है वह प्राय: उपनिषदों की शैली है । इस अलंकार संयोजन में सन्तों का बुद्धि वैभव एवं, वाक् चातुर्य परिलक्षित होता है । गुजरात की हिन्दी सन्त-वाणी से कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

'जाकु नैन नहीं सब नैन देखे,
बैन नहीं सब बोल सो बोले ।
कान नहीं सब करन ही वाके,
नासा नहीं सब बास सो ओले ।
ब्रह्म की ओट तु आप सहरावे,
कोम धरी कहीं ब्रह्म कु खोले ।
अखा भेष खेलारा साईं ।
बुध्य का फेर कपोल कपोले ।'
—अखा ।[1]

'आनंदहेली उँभराणी, संतो ।
आनंदहेली उ भ रा णी ।
चन्द्र-सूरज तो वा घर नहीं,
नहिं पवन नहिं पाणी,।
अष्ट कुल पर्वत उस घर नाहीं,
नहीं वेद नहीं वाणी ।'
—भादुदास ।[2]

---

१. 'संतप्रिया'—७८ ।

२. 'परिचित पद संग्रह', पृ.२६०, पद २ ।

'देखो देखो रे या घट को खेल,
जामें दीप जले बिन बाती,
जिहाँ अनहद नाद बजे अपार,
खट चक्र में प्रणव तार ।'

—छोटम ।[1]

'पाँव बिना चलना, चाँच बिना चुगना, पाँख बिना उड़ जाई,
बिना सुरत की नुरत हमारी, अनल न पहोंचे त्याई ।
आठे पहोर अद्धर रहे आसन, कबहु न उतरे आनी,
ज्ञानी, ध्यानी, विज्ञानी थक गये, ऐसी अकथ कहानी ।'

—रविसाहब ।[2]

५. अनुप्रास :

छन्द-योजना का निर्वाह एवं संगीतात्मकता का समावेश अपनी रचनाओं में करने के लिए इन सन्तों ने अन्त्यानुप्रास की योजना तो प्राय: सर्वत्र की ही है, किन्तु कहीं-कहीं छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास आदि का समावेश भी उनकी रचनाओं में अनायास हो गया है । सन्तों की यह अनुप्रास योजना निरर्थक एवं चमत्कारिक न होकर सहज एवं सार्थक है । उदाहरणार्थ —

'शब्द गुलाल लाल भयो बादुर,
गगन गरद चहुं ओरी,
नीलम नाद निशान बजत है,
रंगरेल नहीं धोरी ।'

—छोटम ।

१. छोटमनी वाणी, ग्रन्थ १, पृ.१७४, पद २८४ ।
२. र.भा.मो.वा., पृ.३५ ।

'चंचल चपल चौर गति तेरी,
कपट कुटिलता करत घनेरी ।'
—प्रीतमदास ।[१.]

'गवरी गऊ गोपाल की, चरण चारो च्हाय,
वांकी टेढ़ी जो चले, तो करे गोपाल सहाय ।'
—गवरीबाई ।[२.]

'मैया मेरो मनवो भयो रे वैरागी,
मारी लेह तो लगन मां लागी ।'
—मोरार साहब ।[३.]

'देखे सब अंजन माने रंजन,
रंजन मन को वाहे ते कहायो ।
ताथें भयो नहिं भव को भंजन,
नाम पुरंजन मान कहायो ।'
—अखा ।[४.]

'अकल कला खेलत नर ज्ञानी,
चलन वलन अवनी पर जाकी,
ध्रुव तारे पर रहत निसानी ।'
—अखा ।[५.]

६. <u>अन्योक्ति :</u>

जहाँ अप्रस्तुत : उपमान : के वर्णन द्वारा प्रस्तुत : उपमेय : का बोध कराया जाय वहाँ अन्योक्ति अलंकार माना जाता है । इसके अन्तर्गत जिसके विषय में कहना होता है, व उसके विषय में स्पष्ट न कह कर दूसरे के द्वारा कहलाया जाता है । संतों ने

१. 'रेवैणी पद'- २५१ ।
२. 'गवरी कीर्तनमाला' पृ.१७६ ।
३. 'र.भा.मो.वा., पृ.७८, पद-३७ ।
४. 'संतप्रिया' १०० ।
५. आश्रम भजनावली ।

अपने काव्य में अन्योक्ति के माध्यम से ही जीवन के विविध पहलुओं की व्याख्या की है। कबीर साहब अन्योक्तियों के प्रयोग में हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं।[१] सूफी कवियों ने तो इसीके माध्यम से उस प्रियतम का साक्षात्कार कराया है, जिसके अंशमात्र से सारी लीला चल रही है, जिसके दीदार के लिए सारी प्रकृति नाच रही है। अन्योक्ति की योजना उन्होंने प्रबन्धगत तथा मुक्तकगत दोनों रूपों में की है।[२] दादू, सुन्दरदास तथा मलूकदास की अन्योक्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

गुजरात की संतवाणी में अन्योक्ति एक प्रमुख अलंकार प्रतीत होता है। यहाँ पर सन्तों की कुछ अन्योक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

'भ्रमर कलिया में लिपटायो,
जल बिच छीप, छीप बिच मोती
स्वाति जाके मुक्ता में समायो।
वृक्ष भूमि में, बीज वृक्ष में,
वृक्ष जाके बीज में छुपायो।
चकमक में आग मेंहदी में लाली,
तैल कैसे तिल में सिरजायो।'

—माधवदास।

'अदभुत रसना कोई जन रसिया,
चक्षु अंग एक श्वासे रे श्वसिया।....टेक
एक सुरत नर मादा मोती,
उछरे अपत को रमि रहे ज्योती।'

अखा।[३]

१. 'संतकाव्य', आ.परशुराम चतुर्वेदी, पृ.७०।
२. 'देखिए -'हिन्दी काव्य में अन्योक्ति, डॉ.संसारचन्द्र। पृ.११२।
३. 'अखानां पद' १०५।

'प्रेम सुन के अगर में पंखी है निज सार,
पिंजर लगाया पाँच का, षट बंधन के काज,
षट बंधन के काज, अहंकारता आप समाई,
कहे सो परमानंद, अविगत विरला पाई ।।
—परमानंद ।

'सखियाँ चलियाँ सहेल कुं स्वर्ग भोवन का भोग,
प्रीतम मुज छाड़त नहीं, राखत सहज संयोग ।'
—प्रीतमदास ।[1]

७. भ्रान्तिमान :

जहाँ पर प्रस्तुत को देखने से सादृश्य के कारण अप्रस्तुत का भ्रम हो जाय, वहाँ पर भ्रान्तिमान अथवा भ्रम अलंकार होता है । संतों का यह एक [illegible]प्रिय अलंकार है । इन्होंने प्रायः मायाजन्य भ्रान्तियों एवं रहस्य के उद्‌घाटन में इस प्रकार की योजना की है । उदाहरणार्थ—

'मिरघ के पास कस्तूरी है,
सो जाय पत्थर को सूंघता है ।'
—अखा ।[2]

हूं हैरत गई हैराइ, अजब गति तेरियाँ,
तुं मनसा वाचा काय, गली शून्य मेरियाँ ।
—अखा ।[3]

---

१. 'प्रीतमकृत साखी ग्रन्थ'— क्रिया अंग —१५ ।
२. 'अखाकृत मूलणा'— ७५ ।
३. 'अखाकृत भजन'— ३१ ।

८. निदर्शना :

गुजराती सन्तों की वाणी में जहाँ उपमा, उदाहरण तथा दृष्टान्त अलंकारों की योजना हुई है, वहाँ उनकी वाणी के अन्तर्गत हमें कहीं कहीं निदर्शना की प्रतीति भी होती है । उदाहरणार्थ —

`प्रेम गली है ऐसी रे,
सिर साटे पग देसी रे ।
०० ०० ००
प्रेम खेल है ऐसा रे,
सो सिर जात अंदेसा रे ।`

— अखा ।[१]

६. यमक :

आचार्य भामह के मतानुसार सुनने में समान प्रतीत होने वाले, पर अर्थ में भिन्न वर्णों की पुनरुक्ति वा आवृत्ति `यमक` है ।[२] गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी में `यमक` अलंकार के उदाहरण इतस्तत: मिल जाते हैं । उदाहरणार्थ —

`शिखा सूत्र कों डार के रे,
शिखा सूत्र पुनि धार ।
०० ००
कनक कामनी छांडके रे,
कनक कामनी पास ।`

— मनोहर ।

---

१. `अखाकृत जकड़ी` १४ ।
२. `तुल्य श्रुतीनां भिन्नानामभिधेयै: परस्परम ।
वर्णानां य: पुनर्वादो `यमक` तन्निगद्यते ।। — भामह ।

१०. श्लेष :

संतों द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनमें एकाधिक अर्थ प्रतीति होती है । साधारणत: इन्होंने अपने नाम का उल्लेख करने के साथ साथ उसीमें श्लिष्ट प्रयोग भी किये हैं । उत्तरभारत के सन्तों में कबीर,[१] सुन्दरदास[2]; मलूकदास[3]; सहजोबाई[4]; आदि की कविता में श्लेष के सुन्दर प्रयोग हुए हैं । गुजरात की सन्तवाणी से यहाँ पर एकाधिक उदाहरण दृष्टव्य हैं —

'अब नरसिंह समान भयो ,
भव बन को उजरायो ।'
—नरसिंह शर्मा ।

'कृष्ण के बचन मानि इश्क को उठाव रे,
ध्यान सच्चिदानंद ब्रह्म को लगाव रे ।'
—मनोहर : सच्चिदानंद :

११. सम :

अपने कथन की स्पष्टता एवं प्रतिपादन में संतों ने जहाँ दो योग्य पदार्थों की संगति अथवा कार्य कारण की एक रूपता दिखायी है, वहाँ इस प्रकार की अलंकार-योजना दृष्टिगत होती है । यथा—

'निंदक पुरुष अरु काग का, एक सुभावे चाल,
हरिगुन हरिया वृक्ष तजि, ताकत नैया साल ।'
—अखा ।[५]

साच सती और निज भक्त दोनु की एक टेक ।
तन मन कु पहलु दिया, अब को करे विवेक ।।'
—अखा ।[६]

---

१. 'सन्तबानी संग्रह' भाग-१, पृ.१२ ।
२. 'सुन्दर ग्रन्थावली' पृ.६४१ ।
३. 'सन्तबानी संग्रह' भाग-१, पृ.६६ ।
४. वही भाग-२, पृ.१६० ।
५. 'अ.सा.', 'निंदक अंग'— ५ ।
६. 'अ.सा.', 'भोगी भक्ति अंग —२२ ।

१२. लोकोक्ति :

संतों की वाणी में कहीं कहीं लोक प्रचलित कहावतों का प्रयोग भी हुआ है । इस प्रकार के कुछ उदाहरण हमने सन्तों की भाषा-सम्बन्धी चर्चा के अन्तर्गत प्रस्तुत किये हैं, फिरभी प्रस्तुत अलंकार की पुष्टि में यहाँ हम सन्तों द्वारा योजित कुछेक लोकोक्तिपूर्ण पंक्तियाँ उधृत करना समीचीन समझते हैं । यहाँ इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि कैवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा । प्रसंग बनाकर अन्त में लोकोक्ति पर घटित करने से प्रस्तुत अलंकार की योजना होगी ।

'चाह राखे मन ज्ञान की,
तो परदा दोनु फार्‌य ।
कहे अखा दो क्युं रहे,
म्यान एक तरवार्‌य ।।' —अखा ।[१]

'ऐसे जाने बिन अखा,
रुदे न सीतल होय ।
ओसु प्यास न माजही
अचो अखा हरि तोय ।' —अखा ।[२]

'नारी को अपराध नहिं, पुरुष पातकी होय,
कहे प्रीतम एक हाथ सु ताली पड़े न कोय ।'
—प्रीतमदास ।[३]

'खोटामणी चलके अती, खरशिर चंदन भार,
अंधा आगे आरसी, मरकट कोटे हार ।'
—दीन दरवेश ।

---

१. 'अ.सा.', 'गुलतान अंग'-६ ।
२. वही 'ज्ञानदग्ध अंग'-१८ ।
३. 'प्रीतमकृत साखी ग्रन्थ' 'नारी निन्दा को अंग'-६ ।

१३. वीप्सा :

संतों ने जहाँ स्वानुभूति के उल्लास में रिमझिम, रुनझुन, निरमल आदि शब्दों की एक से अधिक बार पुनरुक्ति कर अपनी आनंदमयी दशा का वर्णन किया है वहाँ वीप्सा अलंकार की योजना हुई है । कबीर तथा यारी साहब आदि सन्तों में इस प्रकार की उत्फुल्लावस्था का अतिरेक मिलता है । गुजरात के सन्तों में अखा, अनुभवानंद : नाथ भवान :, माण साहब, गवरीबाई तथा निर्मलदास आदि की बानी में इस प्रकार की अभिव्यक्ति के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं । यथा —

'चहुँदिश चित चमकत आपनयों,
दामिनि सी   दमकाई
घोर घोर गरजत घन घेहरा,
सतगुरु सैन   ब ता ई ।'
—अखा ।[१]

'गगन गरजिया श्रवणे सुण्या मेघज बारे मासी,
चमक दामनी चमकत लागी, देख्या एक उदासी ।
गैब तणा घड़ियाला वागे, द्वैत गया दल नासी,
झीलपणा मां झालर वागी, उदय भया अविनासी ।'
—माण साहब ।[२]

'गरजत अनहदनाद अखंडित,
बीजुरी झबुकत भामर ।
अझार झरी लागी है ताते,
सरिहे अग्यान की चादर ।।'
चिहुँ दिस चिर व्यापक नजरावत,
हरि हरि धरती पादर ।।' —अनुभवानंद ।

१. अक्षयरस, पृ.६८, पद ११ ।
२. र.मा.मो.वा., पृ.५, पद १ ।

१४. अतिशयोक्ति :

संतों ने यद्यपि कहीं भी लोकसीमा का अतिक्रमण करना उचित नहीं समझा, तथापि उनकी भावावेशमयी अवस्था के परिणाम स्वरूप हमें कहीं कहीं उनकी रचनाओं में अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन दिखायी दे जाते हैं । गुजरात की संतवाणी में प्राय: सम्बन्धातिशयोक्ति के उदाहरण विशेषरूप से मिलते हैं । उदाहरणार्थ—

'दो लख जोजन चंद रहे दूरी,
पोयण प्रफुल्लित हो ये ।
चकोर चाहत चन्द किरण को,
जीवन ने नहीं जोये ।'
—मोरार साहब ।[१]

'हमें भी मौसमें सरमामें गस्त होता है,
सनम के कूचे में हरबार हमने खाई ठंड,
जो देखा मस्त हमें ठंड ने सरे बाज़ार,
शराबे इश्क की मस्तीसे खुद लजाई ठंड ।'
— अनवर ।[२]

'विरही दाफी देहड़ी, गया समुद्र तीर,
कहे प्रीतम सागर जला, ऐसा विरह शरीर ।।'
—प्रीतमदास ।[३]

अन्य अलंकार :

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी में कुछ चमत्कार मूलक अलंकारों का प्रयोग भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है । यह प्रवृत्ति प्रमुख सन्त कवियों की न होकर ,

१. 'र.मा.मो.वा.', पृ.७२, पद २६ ।
२. 'अनवर काव्य' पृ.२५४ ।
३. 'प्रीतमकृत साखी ग्रन्थ', विरह अंग– ६ ।

प्राय: उत्तरवर्ती सामान्य कक्षा के सन्तों की प्रतीत होती है । बहुत संभव है यह तत्कालीन लोकरुचि एवं साहित्य परम्परा का भी परिणाम हो । गुजरात के अधिकांश संतकाव्य की रचना प्राय: उस समय हुई जिस समय हिन्दी में रीतिकाल वर्तमान था । अत: गुजरात के कतिपय सन्त चमत्कारमूलक उक्ति-वैचित्र्य की ओर भी आकर्षित हुए हों इसमें आश्चर्य नहीं । छन्द-छटा के साथ-साथ इन्होंने न केवल अनुप्रासों वरन् चित्र काव्यों तक की योजना कर डाली । इस प्रवृत्ति का न तो सन्त-काव्य के साथ कोई मेल बैठता है और न प्रमुख सन्तों ने इसे अपनाया ही है । इस उल्लेख का अभिप्राय केवल इतना ही है कि सन्तों ने अपने समय में प्रचलित काव्यगत प्रवृत्तियों पर भी यत्किंचित ध्यान दिया था । गुजरात के उत्तर मध्यकालीन संतों में नभू द्वारा रचित कमल-बंध, चौपड़-बंध, नाग-बन्ध, धनुष-बन्ध चौसर-बन्ध आदि इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं ।[१]

छन्द :

गुजराती साहित्य में छन्दों के विविध प्रयोग बारहवीं शती से लेकर आज तक अनवरत होते रहे हैं । जैन कवियों का समस्त काव्य छन्दोबद्ध है । यद्यपि छन्दों के अतिरिक्त संगीतबद्ध विविध ढालों : तर्जों : एवं देशियों में निबद्ध रचनाएँ भी मिलती हैं । वस्तुत: नरसी-पूर्व का समस्त साहित्य देशियों की अपेक्षा छन्दबद्धता का विशेष आग्रही है । इसके पश्चात् गुजराती साहित्य में देशियों का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ता गया है और छन्दों का प्रयोग मन्द होता गया है । इस सम्बन्ध में श्री.दी.ब.केशवलाल ध्रुव का कथन

---

१. देखिए 'नभूवाणी' पृ.२७० - २८० ।

सत्य ही है कि प्राकृत से परम्परागत छन्दों की निधि अभिवृद्ध होकर गुजराती को मिली । इस रूप में दूहा, चौपई, सोरठा, सरसी, छप्पय आदि अपभ्रंश की सबसे बड़ी देन हैं । छन्द-वैविध्य की रुचि संभवतः दयाराम के काल से पुनः विकसित होती हुई दृष्टिगत होती है । दयाराम कृत `पिंगल-सार', दलपतरामकृत `दलपत-पिंगल' आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं । एक बात विशेष उल्लेखनीय यह है कि हिन्दी का रीति साहित्य और गुजरात का मध्ययुगीन सन्त-साहित्य प्रायः एक ही युग में रचा गया । केशवदास की `कवि-प्रिया', `रसिकप्रिया' और `रामचन्द्रिका' की लोकप्रियता गुजरात में घर-घर देखी जाती है । सौराष्ट्र के राज्याश्रित कवि कच्छ-भुज की पिंगल पाठशाला : ब्रजभाषा पाठशाला : में अध्ययन करते थे । इस रूप में गुजरात की सन्तवाणी पर उस समय की प्रचलित छन्दोबद्ध शैली का अपरोक्ष प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था ।

गुजरात के प्रायः सभी सन्तों ने देशियों के साथ-साथ दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया, छप्पय, सवैया, झूलणा, कवित्त आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया है । छन्द-प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी तथा गुजराती साहित्य में प्रायः यह एक खास अन्तर है कि हिन्दी कवियों की प्रवृत्ति वर्णिक वृत्तों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों की ओर विशेष है, जबकि समग्र गुजराती काव्य में यह प्रवृत्ति वर्णिक वृत्तों की ओर विशेष रूपसे दिखायी देती है । संतों ने जिस प्रकार भाषा के अन्तर्गत व्याकरण का कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया, ठीक उसी प्रकार पिंगलशास्त्र के नियमों की भी इन्होंने सर्वत्र उपेक्षा वृत्ति ही प्रदर्शित की है । इन्होंने तो परम्परा एवं सरलता के अनुरूप जो भी उचित लगा, उसे स्वेच्छा से अपना लिया । कहीं-कहीं पर उन्होंने छन्द प्रयोक्ताओं का उपहास भी उड़ाया है,[१] किन्तु उसमें निहित सन्तों की नकारात्मक ध्वनि उनके सामान्य वृत्त परिचय की द्योतक है । इनको यद्यपि `मगण-जगण' का सहज ज्ञान रहा होगा, तथापि इनकी अभिरुचि प्रधानतया मात्रिक छन्दों की ओर प्रतीत होती है । इनके द्वारा मात्रिक छन्द संयोजन का एक

१. `अमो मगण-जगण नथी जाणता' - अखा ।

कारण यह भी था कि इस प्रकार के पद विविध राग रागिनियों में अच्छी तरह बिठाये जा सकते थे, जबकि वर्णिक वृत्तों में प्राय: यह कठिन है । संधि एवं ताल के अनुरूप इन्होंने जिन छन्दों की योजना की है, वे अधिकांश में मात्रिक छन्द ही हैं । सुन्दरदास की भाँति कुछ सन्तों ने छन्द ज्ञान का अपूर्व परिचय भी दिया है । नभू, हरीसिंह और श्रीमन्नृसिंहाचार्य की बानियों में वर्णिक वृत्तों के विविध प्रयोग मिलते हैं । इस प्रकार की प्रवृत्ति प्राय: दयाराम के बाद की है ।

छन्दों की दृष्टि से गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सन्तों ने जिन छन्दों की योजना की है उन्हें पिंगल आदि के नियमों से पूरी तरह नहीं कसा जा सकता है । कहीं मात्राएँ घटती हैं तो कहीं बढ़ जाती हैं, कहीं शब्द बढ़ते हैं तो कहीं यति-भंग का दोष प्रतीत होता है । संतों का काव्य गेय होने के कारण समय-समय पर परिवर्तित भी होता रहा है । अत: छन्द-योजना में सन्तों की उपेक्षावृत्ति तथा संगीत बद्धता के कारण यह कहना कठिन हो जाता है कि किसी पंक्ति अथवा पूरे पद की परीक्षा किन लक्षणों को दृष्टि समक्ष रख कर की जाय । फिरभी, छन्दों के सामान्य लक्षणों की प्रतीति कराने वाले पदों तथा प्रयुक्त छन्दों के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं :–

<u>दोहा :</u>

जिसके प्रथम तथा तृतीय चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ एवं द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ हों, उसे दोहा कहते हैं । विषम चरणों के आदि में जगण : ।ऽ। : नहीं होना चाहिए ।

संतों की साखियाँ प्राय: 'दोहा' अथवा 'दोहरा' छन्द में योजित हैं । जिस प्रकार 'साखी' सन्तों का प्रमुख काव्य प्रकार है, दोहा उनका प्रिय छन्द है । आकार में छोटा तथा सरल होने के कारण सन्तों ने इसे अपने उपयुक्त समझा है । गुजरात की हिन्दी सन्त-वाणी से प्रस्तुत 'दूहा-छन्द' के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'सर्वातीत सब जा विषे, सब समेत सब शून्य,
स स्वरूप स्फुरत भयो, सोहि ज्ञान नहिं नून्य ।'
—अखा ।[१]

'तीन काल दुखरूप है, यह नारी को नेह,
मूढ़ मती ताको कहे, सदा सुक्ख को गेह ।'
—श्रीमन्नृसिंहाचार्य ।[२]

'जब हिरदा में हरि बसे, तृष्णा टले विराट,
प्रीतम कूंची ज्ञान की, उघड़े अगम कपाट ।'
—प्रीतमदास ।[३]

'बड़ा सरोवर देखके, बगला आवे धाय,
तत्त्व ज्ञान मोती बिना, हंस न तीरे जाय ।।'
—छोटम ।[४]

'भौंरा लेते फूल रस, रसिया लेते बास,
माली सींचे आसकर, भौंरा खड़ा उदास ।'
—मोहम्मद अमीन ।[५]

किन्तु, कहीं-कहीं मात्राओं की घट-बढ़ भी देखी जाती है । यथा—

१. 'संतप्रिया'—२६ ।
२. 'नृसिंहवाणी विलास', भाग २, पृ.२२२ ।
३. 'प्रीतमकृत साखी, तृष्णा अंग'—२३ ।
४. 'छोटमकृत साखी', 'सज्जन अंग'—२६ ।
५. 'मोहम्मद अमीनकृत' युसुफ जुलेखा ।

'इक चंद्र तमकु हरे, तारा नहीं अनेक,
इक सिंह जो बन वसे, सो जाहिर सब देश ।'
—छोटम ।

उपर्युक्त दोहा के प्रथम एवं द्वितीय चरण में १३—११ मात्राओं की अपेक्षा ११—११ मात्राएँ हैं । साथ ही, तुकान्त-क्रम का निर्वाह भी दृष्टिगत नहीं होता । कुछ अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत हैं —

'पवन पानी का पूतला, क्या क्या तामें ढंग,
अखा तांकु खोज ले, जिस गैबी के रंग ।'
—अखा ।

'सुमरन सोई न वीसरे, रहे रूप में मन,
कहे प्रीतम शुद्ध स्नेह सुं, करे सुमरन निशदिन ।'
—प्रीतमदास ।

'पूरण पूरण के प्रेम से, पूरण पूरण की छोलु,
वस्ता विसंभर स्वयं मरा, एक ही फाकमफोलु ।'
—वस्ता ।

चौपाई :

जिसमें सोलह मात्राएँ हों, अन्त में जगण अथवा तगण न हो । समकल के बाद समकल हों, विषमकल के बाद विषमकल हों उसे चौपाई छन्द कहते हैं ।

दोहा छन्द की भाँति सन्तों ने चौपाई की योजना भी की है । इसमें कहीं तो मात्राएँ ठीक बैठती हैं और कहीं कम—ज्यादा हो जाती हैं । उदाहरणार्थ —

II S SS S I IS S =१६ मात्रा ।

शुद्ध : 'तुम ही दाता दीन दयाला,
तुम हि भयंकर काल कराला ।'
—प्रीतमदास ।[१]

अशुद्ध : 'प्रकृति पुरुष मिलि इंड उपायोजी,
अबुनाही इंड तरायो जी ।
आभ जमी अद्भुत रचायोजी,
खाण तणो परदेश करायोजी ।'
—रविसाहब ।[२]

शुद्ध — 'गुरु गोविंद दो एक स्वरूपा,
नाम रूप गुन भेद अनूपा ।
गुरु अविचल पूरण पद धामा,
गुरु स्वामी गुरु जग विश्रामा ।'
—रविसाहब ।[३]

कुंडलिया :

क्रमश: 'दोहा' और 'रोला' छन्द के मेल से 'कुंडलिया' छन्द बनता है । कुंडलिया में कुल छ: पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में चौबीस-चौबीस मात्राएँ होती हैं । दोहे का पूर्वदल कुंडलिया का प्रथम पाद तथा दोहे का उत्तरदल कुंडलिया का द्वितीय पाद माना जाता है । उसके नीचे रोला के चार पाद होते हैं । 'कुंडलिया' छन्द की विशेषता यह है कि इसके आदि और अन्त का पद एक-सा होता है ।

गुजरात की संतवाणी में 'कुंडलिया' अति प्रचलित छन्द है । दीन दरवेश की कुंडलियाँ तो अति प्रसिद्ध हैं ही, अखा, धीरा, छोटम, नृसिंहाचार्य, अरजुन आदि सन्तों ने भी

---

१. 'प्रीतमदासकृत—'ब्रह्मलीला ।
२. 'रविसाहबकृत-भाणगीता', पृ.६ ।
३. 'रविसाहबकृत-गुरु महात्म्य ।

सुन्दर कुंडलियों की रचना की है। संतों की कतिपय कुंडलियाँ यहाँ उधृत की जाती हैं —

'हिंदू कहै सो हम बड़े, मुसलमान कहैं हम्म,
एक मूंग दो फाड़ है, कुण ज्यादा कुण कम्म।
कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहिं कजिया,
एक भगत हो राम, दूजा रहिमान सो रजिया
कहै दीन दरवेश, दोय सरिता मिल सिन्धू,
सबका साहब एक, एक मुसलिम एक हिन्दू।'
—दीन दरवेश।[1]

'पान हले नहिं हुकम बिन, हुकम प्रीत अरु रीत,
हुकमी बंदा जुग सभी, हुकम हार अरु जीत।
हुकम हार अरु जीत, हुकम से पवनहि पानी,
हुकमे शेष-महेश, हुकमसें इन्द्र-इन्द्रानी।
तैतीस कोटि हलमल हले, चले चंद शशि भान,
दास धीर हरि हुकम सैं, हुकम बिन हले नहिं पान।'
—धीरा।[2]

'अल्ला अरजुन एक है, मन मक्के मत जाव,
राम रोटियाँ पाकियाँ, खुशी होय तहँ खाव।
खुशी होय तांह खाव, ख जगत मैं एक जुवारी,
पीसता पडीयो फेर, खलक हुई खुवारी।
देख ज्ञान मैं देख, अदल है दोनु पल्ला,
मन-मक्के मत जाव अरजुन है एकज अल्ला।'
अरजुन भगत।[3]

---

१. 'संतकाव्य' पृ.४३७।
२. 'प्रा.का.मा.', ग्रन्थ २४, पृ.१६७ :१।
३. 'अरजुन वाणी' पृ.१३८।

अखाकृत कुंडलियाँ सात पाद की हैं जिनमें प्राय: प्रथम पाद की अन्त में पुनरावृत्ति होती है । उदाहरणार्थ —

`ब्रह्म कवच पहेने बिना, काल लताड़े को बच्यो ।
बच्यो न शिव ब्रह्माय, उडायण नवग्रह तारा,
शेष, गणेश, दिनेश, यक्ष, किन्नर, नर सारा ।
इन्द्र, चन्द्र, नरेन्द्र, ठौर दिवी के कैते,
वीर दश दिगपाल, जाहेर पैगम्बर जेते ।
जे धरी आयो काया, सो सब माया संग रच्यो,
ब्रह्म कवच पहेने बिना, काल लताड़े को बच्यो ।।
—अखा ।[1]

कुछ सन्तों की कुंडलियाँ छ: पाद की न होकर मात्र चार पाद की भी लिखी गयी हैं । उदाहरण के लिए —

`सरस्वती मात निज समझै, पूरण पद निरधार,
जनम मरण छोड़ाय के, प्रेम कियो परकाश ।
प्रेमकियो परकाश, निकट ब्रह्म कहानी,
परमानंद अविनाश, जाणे सो संत पुराणी ।`
—परमानंद ।[2]

`प्रेम सुन के अगर में, पंखी है निज सार,
पींजर लगाया पाँच का, खट बंधन के काज ।
खट बंधन के काज, अहंकरता आप समाई,
कहे सो परमानंद, अविगत विरला पाई ।`
—परमानंद ।[3]

---

१. `अखाकृत कुंडलियाँ` १६ ।
२. `आत्मवाणी विलास भजनावली`, पृ.१७२:२ ।
३. ` वही पृ.१७५:२१ ।

छप्पय :

'कुंडलिया' छन्द की भाँति इसमें भी छ: पाद होते हैं, जिसके आदि में रोला के चार पाद और अन्त में उल्लाला के पूर्व-दल और उत्तर-दल होते हैं ।

गुजरात के सन्तों ने 'छप्पा' नाम से प्राय: दो प्रकार की रचनाएँ की हैं । एक काव्य प्रकार है और दूसरा छन्द प्रकार । अखा के छप्पा षट्पदी अवश्य हैं किन्तु उनमें 'छप्पय' की योजना नहीं है । 'अनुभव बिन्दु' तथा 'चित्त विचार' आदि में छप्पय' की योजना की गयी है, किन्तु उन्हें 'छप्पा' नाम से अभिहित नहीं किया जाता । रविसाहब के कुछ हिन्दी पदों में प्रस्तुत छन्द की योजना देखिए —

'रामनाम निज सार, राम गुरु अखंड उजागर,
रामनाम निज टेक, राम सुख ही के सागर,
राम गरीब निवाज, राम सब दुख के भंजन,
राम परम कृपाल, राम सब दुख के भंजन,
शून्य सनेही राम भज, तज माया अविद्या फौज को,
रविदास एक नाम से, मान तु अखंडित मोज को ।'

oo oo oo

'नाम बिना ज्यु ज्ञान, घृत बिना असन असूचा,
वाचा बिना जीभ देह, नाम बिना शोभन बूचा,
बास बिना ज्यु पुष्प, ज्युं मिसरी बिन खीरा,
बिना चढ़ाई कमान, सन्मुख लगे न तीरा,
ज्ञान दीपक वैराग शशि, ज्यों अर्क सम जानिए,
रविदास नाम सहित, भक्तिमणि प्रमाणिए ।'

रविसाहब ।[1].

---

१. 'र.भा.मो.वा.', पृ. ५५ ।

<u>हरिगीतिका :</u>

इसमें (प्रत्येक चरण में) कुल २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु-गुरु होते हैं, तथा सोलह-बारह पर यति होती है।

गुजरात की हिन्दी संतवाणी में यह एक प्रिय छन्द रहा है। अखा ने 'ब्रह्मलीला' की रचना इसी छन्द में की है। उदाहरणार्थ—

'नाही मिथ्या नाही साचो, = १६ मात्राएँ
रूप ऐसो जीवको। = १२ मात्राएँ
जनम मरण और भ्रमन संशय, = १६ मात्राएँ
चल्यो जाइ सदैव को।' = १२ मात्राएँ

अखाकृत ब्रह्मलीला ६:१।

<u>सवैया :</u>

गुजराती सन्तों ने प्रायः 'सुमुखि' एवं 'दुर्मिल' आदि सवैया छन्दों की योजना विशेष रूपेण की है। अखाकृत 'संतप्रिया' तथा हरिसिंहकृत 'ज्ञानकटारी' से इस प्रकार के एकाधिक उदाहरण दृष्टव्य हैं—

सुमुखि छन्द :

। ऽ ।। ऽ।। ऽ। । ऽ।
'कहा भय कंचन कुंद सु अंग,
रंग सुगंध शोभा अति ओपे।
कहा भय छ तान तुरंग तुरी चढ़े,
ध्रुजे धरा जाके नेक कोपे।
धनद सो धन करन सो दानी,
तो कहा काम सर्यो हरि तोपे।
एते गुन औगुन भये सोनारा,
जो गुरुज्ञान न पायो गुरुपे।'—अखा।[१]

---

१. 'संतप्रिया' ११।

दुर्मिल छन्द : सगणाष्टक :

(।। ऽ । ।ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ)

अशुद्ध { सुख होय सदा दुख दूर तेरो, सत्संग में जा मेरो मान कह्यो ।
तुं तो भूल गयो एहि भांति सबै, ब्रह्मज्ञान पदारथ कुं न गह्यो।

शुद्ध { खट भोगनि काज उपाव अनेक, करी सठ संगत आप बह्यो,
हरिसंग के शुद्ध विचार बिना, अस मूढ़ क्युं मालिक मोहि रह्यो।

हरिसिंह ।[१]

घनाक्षरी : कवित :

इसमें इकतीस वर्ण होते हैं । अन्तिम वर्ण गुरु होता है । सोलहवें अक्षर पर और पाद के अन्त में यति होती है । इसका दूसरा नाम 'मनहरण' भी है । गुजराती सन्तों में मनोहर : सच्चिदानंद : ने इस छन्द का विशेष उपयोग किया है । उदाहरणार्थ —

'कोई कहे ज्ञानी जो सकल व्यवहार जाने,
कोई कहे सब शास्त्र जाने सोई ज्ञानी है ।
कोई कहे ज्ञानी काल भूत अरु भावी जाने,
कोई कहे ज्ञानी करामत हू की खानी है ।
कोई कहे ज्ञानी ज्यों सकल जग माने सोई,
बोलत विविध ऐसे मिथ्यामति हानी है ।
ब्रह्म को लहे अभेद, जैसे बोले चारों वेद,
मनोहर सोई सत्य ज्ञानी की निशानी है ।

—मनहरपद—११ ।

१. 'हरिसिंहकृत' ज्ञानकटारी ।

'करत गुमान एक देह अभिमान एसो,
आप आपमाँहि आपै फूल्यो ही फिरत है ।
नाहिं आप वपु तीन तेरे मैं तन स्वरूप,
शुद्ध गीता गुरु वाक्य शास्त्र जो भरत है ।
सारऊ असार ही को करले विचार आप,
देहकुं हुं मानी मूढ़ कायकुं मरत है ।
जाने हरि सत्संग गुरुगम भयो तब,
चोर्यासी को फंदहु मैं कभु न परत है ।'
—हरिसिंहकृत 'ज्ञानकटारी'

'घर घर गुरु होइ बैठत विचारहीन,
ध्यानहि धरत सो तो बग सम जानिए ।
सेवक चरन मैं परत निज गुरु गनी,
मोहजार डारत है गुरु निज बानिए ।
प्रपंच रहित सब बात कहे ऊपर की,
अंतर करन कहो, कैसे पहचानिए ।
नरसिंह बिन सब, भ्रम को बढ़ावत है,
कलियुग माँही यह, कौतुक बखानिए ।'
—नृसिंहाचार्य ।[१]

रस :

श्रुतियों एवं पुराणों में अनेकशः आत्मा को आनन्द रूप और रस रूप कहा है ।[२] साहित्याचार्यों ने काव्य के अन्तर्गत अनिर्वचनीय काव्यानुभूति को ब्रह्मानंद के सादृश्य पर ब्रह्मानंद सहोदर कहकर अभिहित किया है । इस रूप में यदि ब्रह्मानंद ही सच्चा अथवा

१. 'नृसिंह वाणी विलास' पृ.२१८ ।
२. 'रसो वै स.।'

वास्तविक रस है तो सत्काव्य का प्राण भी वही है ।[1] सन्तों के काव्य का प्रयोजन यही आत्मानन्द था जिसमें भक्तिरस का परिपाक अपने समुन्नत रूप में हुआ है । संस्कृत के आचार्यों ने जिन नवरसों की प्रतिष्ठा की उनमें भक्ति को रसरूप में नहीं माना गया । रुद्रट ने प्रेयान और विश्वनाथ ने वात्सल्य रस की कल्पना अवश्य की, किन्तु आगे चलकर इन दोनों का पर्यवसान रतिभाव के अन्तर्गत कर दिया गया । भरतमुनि ने भक्ति-रस का किंचित् उल्लेख किया है, किन्तु उसका विशेष महत्त्व न समझकर उसका पर्यवसान शान्तरस के अन्तर्गत कर दिया गया । आचार्य जगन्नाथ ने भी आत्मा की रस रूपता को स्वीकार किया किन्तु भक्ति को रस तक पहुँचाने में वे भी झिझकते रहे । भक्तिरस की स्थापना वस्तुत: साहित्यिक क्षेत्र में न होकर धार्मिक क्षेत्र में हुई । गौडीय वैष्णवों ने इसे अलग रस ही नहीं बल्कि सर्वश्रेष्ठ रस के रूपमें स्वीकार किया ।[2]

भक्तिरस :

सन्तों का काम शास्त्रीय पद्धति पर नवरसों का युक्तियुक्त निरूपण करना नहीं था बल्कि वे तो ऐसे गोताखोर थे जिनका काम भक्ति के सागर में डुबकी लगाकर आत्मानन्द का मोती प्राप्त करना था, अनन्त के पथ पर चल पड़ने वाले ऐसे बटोही थे जिनके आँसुओं से पथ भीना होता और सुरों से आसमान गूँज उठता, आध्यात्मिक लौ में लीन होने वाले ऐसे शहीद थे जो पथ की बाधाओं को देख झुकने वाले नहीं थे, ऐसे सूरमा थे जो टूक-टूक हो जाना पसन्द करते ।[3] सन्तों की बानियों में इसी `भक्ति रस` का अभिधान `राम रसायन`[4] `हरिरस`[5]

---

१. डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत `हि.नि.का.दा.`, पृ.६४५ ।
२. `काव्य प्रकाश` व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, पृ.११८ ।
३. `ज्यु रण न छाड़े सूरमा, टूक टूक तन होय ।`-अखा-अ.अक्षयवाणी, पृ.२२४।
४. `राम रसायन जन जिनहिं पियो है ।`-अखा ।
५. `कबीर हरिरस यों पिया बाकी रही न थाकि ।` क.ग्रंथ पृ.२६०।

'अन्तररस'[१], 'इमरित'[२], आदि के रूप में हुआ है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने भक्ति रस की शास्त्रीय व्याख्या इस प्रकार की है —

'भक्ति रस का स्थायी भाव परमात्मा विषयक अलौकिक रतिभाव कहा जावेगा। परमात्मा देवता महापुरुष आदि आलंबन के रूप में वर्णित मिलेंगे। ज्ञान, वैराग्य, सत्संगति आदि उद्दीपन की सीमा में आवेंगे। भक्तिभाव मूलक अश्रु-रोमांचादि अनुभाव होंगे। हर्ष, औत्सुक्य, आवेग, चपलता, उन्माद, चिन्ता, दैन्य एवं स्मृति आदि व्यभिचारी भाव कहे जायेंगे।'[३]

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भक्ति-रस और मधुर-रस में कोई भेद न मानते हुए उसके दो पक्ष स्वीकार किये हैं :[४] —

१. संयोग पक्ष।
२. वियोग पक्ष।

१. संयोग पक्ष :

गुजरात की सन्त वाणी में संयोग और वियोग दोनों पक्षों के समान दर्शन होते हैं। कबीर की भाँति प्रेम की खुमारी इन सन्तों पर भी पूरा असर कर जाती है।[५] इनका आलम्बन राम भी है और कृष्ण भी, जो सगुण भी है और निर्गुण भी और जो सगुण-निर्गुण से परे उस अनिर्वचनीय लोक का वासी भी है जहाँ बारह महीने बसन्त है। प्रेम का निर्झर जहाँ सदैव बहा करता है, और जहाँ परब्रह्म का आनन्द-

---

१. देखिए, वस्ती कृत 'मंगल्ल' में 'अन्तर रस'।
२. 'मीरां दासी राम की, इमरित बलिहारी।' मीरां पदावली। पृ.२४६।
३. 'हि.नि.का.दा.', पृ.६४५।
४. 'संतकाव्य', पृ.५४।
५. 'यह रस चाखत चढ़ी खुमारी रे।' त्रिविक्रमानंद।

रास निरन्तर हो रहा है[१]; अनन्त ज्योति पुंज जहाँ फलकते हैं और अनहद का बाजा बजता रहता है।[२]. ऐसे अगम्य और अगोचर लोक का वासी आँखों में रम गया है जहाँ और कोई ब नज़र आता ही नहीं।[३]. बसन्त सी धन्यभागी ऋतु में प्रिय-मिलन के आनंद से इनका मन सिहर उठता है और आत्मा केसर, कुंकुम, गुलाल की होली प्रिय के साथ खेलने को मचल उठती है।[४]. प्रिय मिलन के आनन्द को छिपाना कठिन है, लज्जा का आवरण उस पुलकावलि को ढके हुए है।[५]. मानिनी का रूप भी प्रिय को देखते ही विगलित हो उठता है,[६]. सोलह शृंगार सजकर अभिसार के लिए वह सुहागन प्रेम-गली में निकल पड़ी है,[७]. और सेज पर अचानक प्रिय को पाते ही रस की धारा से स्निग्ध हो उठी है।[८]. इस आध्यात्मिक रस के

---

१. 'ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा।' अखो।
२. 'अनहद बाजा वागिया, फलक फलक्या नूर।' रविसाहब।
३. 'नैना आगल रमी रह्या, और न आवे दृष्ट।' रविसाहब।
४. 'अक्षयरस' भजन ५।
५. 'सैन एक की तुं रमनारी।
कहा तुं आप लजावे रे।
कंचन कहा कथीरो साजा।
तुझे एकपना न आवे रे।
हलकी बात न कीजे।' —अखो, जकड़ी-३३।
६. 'साजन संग सदा सुखकारी। मुख फिराये क्या बैठी रे।' वही।
७. 'सब सणगार सजे ढोलन का। नख सिख भारी बहु मोलन का।
नहीं अधिकारी मुख घोलन का। जिस घर न्हाय आपे चली आवे।'—अखा, जकड़ी-३०
८. 'मोहे पियु सेज पर मिलिया रे, तबकी बहोत मैं रलीया रे।
उमगी सो रस उजलीया रे, क्या जाने लोका काला रे।'—जकड़ी-२६।

मूल्य को कौन आँक सका है, कौन प्रकट कर सका है ? मिठाई खानेवाले गूँगे व्यक्ति की तरह वह मन ही मन प्रसन्न [redacted] तो [redacted] होता है लेकिन अभिव्यक्त नहीं कर पाता । गगन का [redacted] दोहन कर दूध पीने वालों की बात ही कुछ और है ।

२. वियोग पक्ष :

विरह इनके लिए प्रेम की कसौटी है । यह वह माली है जो प्रेम रूपी वृक्ष को सदा सींचता रहता है ।[१] विरह इनके लिए `पीव` का `जीव` भी है और `पीव` भी वही है ।[२] यह विरह ऐसा है जो जागने पर तरसाता है और सोने पर सपना बन कर आता है ।[३] इस रूप में गुजरात के सन्तों ने विरह को बहुत ऊँचे स्तर से देखा है । व्रज की विरहिणी गोपिकाएँ इनके विरह का आदर्श हैं ।[४] कबीर की फक्कड़ता और मीरां की विह्वलता दोनों के दर्शन हमें इनकी विरहानुभूति में होते हैं । आध्यात्मिक रति के उद्दीप्त होने वाले अनुभाव रोमांचक एवं हृदयग्राही हैं —

`त्वचा मांस सब जल गीया,
रविदास कीया राख,
बालम आवो बुलावने,
नव वल्लव होय आँख ।`[५]

और भी,

`सखी री मोको रे पिया बिन कल ना परे,
मंदर अंधेरा [redacted] मोरी सेज भी सूनी
बिन पिया जियरा डरे ।.. सखी री०
खानपान मोको कछु न भावे,

---

१. `विरह बिना हरि ना मिले, कीजे कोटि उपाय,
माली सींचे वृक्ष कुं, ऋतु विण फल ना थाय ।`—वस्तो अंग विरही जनको सा.१६।
२. `विरहा पीउका जीव है, बिरहा पीउ नहिं दोय ।` अखा विरही अंग .सा ४ ।
३. `अखो वही सा.६ ।
४. `साचो व्रेह ब्रजनार को ।` प्रीतमदास ।
५. `र.भा.स.वा. : पृ.२४६ ।

निसदिन जियरा डरे,
बिरहु अगन मोरे तन मैं उठत है,
अखियु नीर भरे ।[१]..... सखी री० ।

प्रिय परदेश चला गया और अकेली विरहिणी रास्ते पर सिर पटक कर रो रही है । प्रिय दर्शन बिना सारा दिन गुज़र जाता है और काल की तीखी तलवार सिर पर लटकती ही रहती है ।[२] इसके मन की पीड़ा को कौन समझ सकता है ?[३] न वह प्रिय तक पहुँच पाती है और न कोई उसका सन्देश प्रिय तक ले जाने को ही तैयार है ।[४] जायसी की नायिका की भाँति आँखों से आँसुओं की जगह रक्त की बूँदें टपकने लगती हैं और आँखें लाल हो जाती हैं । विरह रूपी तेल तन रूपी दीपक मैं जल रहा है और प्राण रूपी बाती प्रिय मिलन की प्रतीक्षा मैं सारी सारी रात जलती रहती है ।[६] उसकी असमर्थता विरह की ज्वाला को और भी प्रज्ज्वलित कर देती है

'मेरे प्रीतम चले परदेश जीवन मैं कैसे जीवु,
आवे न जावे कोई खबर न लावे,
कोवन को कहावु संदेश ?'

---

१. 'अनवर काव्य, पृ.१७८ ।
२. 'बिरहन भरे एकली राहा सीर बैठी रोय ।
दिन जाय दीदार बिन सिर पर करबत सोय ।।'-अखो—विरही अंग-१६ ।
३. 'मेरे मन कछु और है, लोगों के मन और,
पियु विजोगे कामिनी, वसे कौनसे ठोर ।'—वस्तो-अंग विरहीजन को-८ ।
४. 'पहुँच न शकुं पीयु पै, भेज न शकुं कोय,
रवीदास दिन रातड़ी, खरी वमासण होय ।' रविसाहब 'र.भा.स.वा.,पृ.२४६ ।
५. 'लोचन से लोहु चुवे, बिन देखे मेहबूब ।' वही । पृ.३०३ ।
६. 'विरह तेल तन कोड़िया, प्राण बनावुं बात,
कहे प्रीतम पति कुं मिलन, जारत हुं दिन रात ।'—प्रीतमदास,प्री.वा.,पृ.१२०:७ ।

शान्त-रस :—

भरत मुनि तथा मम्मट आदि संस्कृताचार्यों ने शान्त रस को नवम् रस के रूप में स्वीकार कर 'निर्वेद' को उसका स्थायी भाव बताया है ।[१] भिखारीदास के मतानुसार मन में वैराग्य आने से अथवा तत्त्वज्ञान प्राप्त होने पर 'शांत-रस' उत्पन्न होता है । अतएव जब सब जीवों के प्रति समान भाव उत्पन्न हों, किसी के प्रति राग-द्वेष का भाव न हो, तब 'शान्त-रस' की निष्पत्ति मानी जाती है । इसके संचारी भाव—हर्ष, विषाद, स्मृति, धृति और निर्वेदादि हैं । आलम्बन हैं—अनित्य संसार की असारता का ज्ञान, परमात्मा का चिन्तन, नरक के महान दुखों का चिन्तन, प्रभु के गुणों का कीर्तन, ईश्वर-ध्यान । उद्दीपन के रूप में बुढ़ापा, मरण, व्याधि, पुण्य-क्षेत्र, सत्संग, एकान्त-वन इत्यादि तथा अनुभाव रोमांच, विलाप, योग-साधन, ईश्वर-भक्ति, संसार-भीरुता आदि कहे जाते हैं ।[२]

संतों की वाणी वस्तुत: भक्ति रस तथा शान्त-रस की कविता है, जिसमें एक ओर अक्षय-रस की खुमारी है तो दूसरी ओर निर्वेदमूलक अपूर्व शान्ति है । शान्त रस के वे सभी लक्षण जो आचार्यों ने गिनाए हैं, गुजरात की सन्तवाणी में भी मिलते हैं । उनके स्फुट पदों में कहीं संसार की असारता का चित्र है, तो कहीं वैराग्यमूलक अनुभूति है, कहीं ईश्वर का गुणगान है तो कहीं अनहद की झनकार है । इस प्रकार के सभी पदों में सन्तों ने निर्वेद अथवा सम् भाव से सांसारिक बन्धनों को तोड़कर सत्संग, हरि-कीर्तन, नाम-स्मरण आदि के माध्यम से ब्रह्म दर्शन की चर्चा की है । उदाहरण के लिए गुजरात की हिन्दी-सन्तवाणी से कुछ पद दृष्टव्य हैं—

---

१. देखिए — 'काव्य प्रकाश' ३५ सू.४७ ।
२. देखिए — 'काव्य निर्णय' संपादक डॉ.सत्येन्द्र । पृ.६४ ।

संसार की असारता :

'दम का भरोसा मत कर भाई, साधन करंदा साई,
साधन करंदा साई, मै वारी क्या ।
पाव पलक की खबर न जाने, करे काल की आसा,
सिर पर जमरा झपट रह्या है, न छोड़े जंगल वासा ।
हस्ति, घोड़ा और माल खजाना, कोई तेरे काम नहिं आवे,
अचेत होकर क्यु बैठा है, पीछे तु पस्तावे ।
सद्‌गुरुजी के शरनन जाई, जाइ चरने शीश नमाई,
आधीन होकर निसदिन रैहना, जम की त्रास मिटाई,
जो आय सो जाने को है भाई, को रहने को स्थिर नहीं,
धीर सतगुरु बतावत संतो, आखर रहेगी भलाई ।।'

—धीरा ।

वैराग्यमूलक अनुभूति :

'म्हारी लेह तो लगन मां लागी,
मैया मेरो मनवो भयो रे वैरागी ।
संसार वहेवार मैं सरवे विसारियो,
बैठो संसारियो त्यागी रे ।'

—मोरार ।

'अलख से प्रीत लगाव पियारे,
तोहे यहाँ से एक दिन जावना है ।
यही पुर पट्टन लगे रंग लाल,
यहाँ बेर ही बेर नहीं आवना है ।
कुछ नेक सौदा कीजे यार मेरा,
परवर को नाम मुख गावना है ।
साई समर्थ कहे सोच दाना,
तुं पंछी मुसाफिर पावना है ।'

—समर्थदास ।

ईश्वर-कीर्तन :

'जाकु रंग न लाग्यो रामको,
सो नर पामर मूढ़ गमार रे,
ताकु नहिं ठरने को ठार रे ।
काया जैसी कोटड़ी रे,
कुमति काजल माय,
आप न खोजे आपको रे,
उलटा फिर फिर जाय ।'

—छोटम ।

'मेरे मन, मेरे मन, हरीनाम लागे मीठो ।
गुरु प्रताप, संत की संगत, प्रेम भक्ति से दीठो ।
निस-बासर हरि नामहि रटतां, कट्यो करम को चीठो,
हरिनाम औषधि, रसना कटोरी, प्रेम प्रीत से पीतो
ध्रु, प्रह्लाद सगर सो पीनो, नुगरा जात फुरीतो
गवरी कहे प्रभु नटवर नागर, तुम बिन सब जुग फीको ।

—गवरीबाई ।

आत्म ध्यान :

'बरसत अनुभव उमग्यो सावन,
जलथल होय रह्यो सब हरिया,
लागे खेत सोहावन ।।
भजन सुभग भयो जीवन को,
मिलत रुचे अग्न पावन ।।
जरे बरे भव-दव मैं प्रानी,
सो लागे तपत बुझावन ।।
अनुभव अमृत पान करतहि,
होय रहे सब पावन ।
ब्रह्म बिना कछु और स्फुरे नहिं,

बोलत अक्षर बावन ।
बिजुरी बिचार प्रकासे घन-घन,
गरज विमल गुन गावन ।।
याकुं खोजत कई युग बीते,
सो पायो मन भावन ।।`

—अनुभवानंद ।

अद्भुत रस :

जिसके आस्वादन से आश्चर्य प्रकट हो, साहित्याचार्यों ने उसे `अद्भुत रस` कहा है । इसका स्थायी भाव है-विस्मय । आलंबन है—अलौकिक दृश्य, आश्चर्य जनक वस्तुएँ अथवा कार्य । उद्दीपन-गुण कीर्तन, तथा अनुभाव हैं—रोमांच, स्तंभ, स्वर भंग प्रस्वेद, अनिमेष देखना, संभ्रम आदि ।

संतों की संधाभाषा में प्राय: अद्भुत रस की अवतारणा हुई है । ब्रह्मलीला के निरूपण तथा सहज साधना के , उन्मेष में भी हमें अद्भुतरस की योजना मिलती है । ब्रह्म के विराट-दर्शन में गुजराती सन्तों ने ऐसे अनेक अद्भुत एवं अलौकिक दृश्यों की योजना की है जिनसे उन्हें अद्भुत रस की योजना में पूर्ण सफलता मिली है । उदाहरणार्थ —

अलौकिक स्थिति:—

`संतो बात बड़ी महापद की,
शब्द सयान कछु नहीं लागत,ऐसी स्थिति बेहद की ।.. संतो
द्वंद्वातीत द्वैत सो भासे,कहा कहुं कोविद की,
आप अवाच्य वाच्य नहीं बोलत, अजबकला महानिध की ।
ग्राहक ग्रहण ग्राह्य नहिं तामें, वाणय खुटी जहां श्रुत्य की,
रूप अरूपी आप अखा है, बूझ बड़ी ए गत्य की ।`

—अखा ।

अलौकिक कार्य :

'कोई केहंदा रे, कहत न आवे मोईं ।
देखे वाकु वाचा नहिं, वाचा देखत नाहीं,
गूंगे की गति गूंगा जाने, समझ समझ मुस्काई,
सूरे की गति सूरा जाने, कायर कु कल नाहीं ।'
—रवि साहब ।

विराट स्वरूप-दर्शन :

'आत्मा प्रगट्यो आनंद रूप ।।
आनंद मात्र वपु नासिका, सिर मुख नखसिख चिद्रूप ।
ग्रीवा करण नैन अति सुंदर, हृदे व हस्त कटि पद अनूप ।
सुंदरता कछु कही न जावत, अद्वतीय अगम अरूप ।।
श्रुतिं कौ सार विचार करत ही, प्रगट्यो जैसे हिलूप,
अनुभवानंद मगन मनसा भई, निरखत दिव्य स्वरूप ।।'
अनुभवानंद ।

'एकी समै ब्रहांड तेरा सीस,
भूषन तेरै पाँच – पचीस ।
चंद – सूर्य दोऊ तेरे नैन,
सारदा सोहि है तेरे बैन ।
तेरे उदर मैं सागर सात,
सप्त पातार लौं चरन विख्यात ।
सगुन रूप कौ ऐसो विस्तार,
निर्गुन कौ कौन पावे पार ।।
तेरो संकल्प मैं अनन्त वैराट,
ऊँचा अद्भुत तेरा घाट ।।'
— अनुभवानंद ।

वीररस :

सन्तों ने जहाँ मन और वासनाओं के दमन में, अन्तर्मुखी साधना विषयक प्रयासों में सिपाही, फौज, सेना आदि के विविध रूपक खड़े किये गये हैं। वहाँ हमें उनकी रचनाओं में वीररस के दर्शन होते हैं। इस प्रकार के रस-दर्शन में रवि साहब का एक पद दृष्टव्य है :-

"मैं सिपाही सद्गुरु साहेबका, लडूं तोप बख्तर पहेरी,
शील, संतोष का बख्तर पेहरूं, लऊं शमशेर सतगुरु केरी,
सात साहेर का घूंट मराऊं, मारूं काल दुश्मन बेरी,
सिंह बकरी भेड़ा चराऊं, राजा रंक की एक शेरी ।
पांच पचीस कोई जान न पावे, ब्रह्म महेल में जोऊं हेरी ।
सत् शब्द की लगन खुमारी, सुन शिखर सुरता मेरी ।
परिब्रह्म के परचे खेलुं, करूं टेल सत सबूरी,
आदु राज ने आदु दुहाई, होई छाप पादशाही केरी,
कहे रविदास सद्गुरु के आगे, मांगुं मोज चाकरी तेरी ।"
-रविसाहब ।[१]

हास्यरस :

गुजरातीसन्तवाणी में हास्यरस की अवतारणा प्रमुख रूप से अखा के छप्पों, धीरा की काफियों और भोजा के चाबखों में हुई है। परम्परागत जर्जर रूढ़ियों के प्रति व्यंग्य करते हुए इन सन्तों ने जिन पदों की रचना की है उनमें हास्य रस के सामान्य लक्षणों की प्रतीति होती है। अखा ने वैराग्य एवं सत्य के अनुसंधान में अपने औजारों को भले ही कुएँ में फेंक दिया हो, किन्तु आदत से मजबूर ठोक-बजाने

१. र.भा.भो.वा, पृ.१५, १६ ।

वाले हाथों और तराश देने वाली कलम को जो वाणी मिली वह तो अखा के औजारों से भी अधिक चौटदार थी । हँसा-हँसा कर चोट करना अखा को खूब आता है । पता ही नहीं चलता कि चोट कहाँ लगी है । कसक का अनुभव तो बाद में होता है । माले की व नोंक से लिखने वाले धीगड़मल धीरा की तो बात ही कुछ और है । भोजा के चाबखा चाबुक की तरह पीठ को ही नहीं, सारे तन-बदन को स्याह कर देते हैं । सन्तों की हिन्दी वाणी में उनकी गुजराती वाणी की अपेक्षा यद्यपि हास्य की अवतारणा बहुत कम हुई है, फिरभी इस प्रकार के विरल पद उनकी ठोस अभिव्यंजना शक्ति के परिचायक हैं । इस रूप में मनोहर तथा बापू साहब गायकवाड़ के कुछ पद दृष्टव्य हैं —

'भल कलियुग में भांड भवैया,
परम हंस बनी बैठत भैया,
कुत्सित नर कुं कहत कनैया ।
ब्रह्म विद्या की बात न जानत,
झुम झननन ठुम ठननन बजैया ।
तोते जिमि पढ़ी काग की न्याई,
कीवी कीवी कीवी कीवी कीवी की करैया ।'

—मनोहर ।

'निमाज पढ़ता तो बोले बिसमिल्ला रे,
भाई रे निमाज पढ़ता तो बोले बिसमिल्ला ।
तीस रोज रखता और मच्छियों कु चखता,
और बकरे का काटता है गल्ला ।
साहेब का जीव बंदे मार क्यों तैं डारा,
ए बदी खाने दोजख में टल्ला रे ।'

—बापू साहेब गायकवाड़ ।

बीमत्स-रस :

सन्तों ने जहाँ नारी के भौतिक सौंदर्य के प्रति घृणा तथा मनुष्य-देह के प्रति जुगुप्सा का भाव व्यक्त किया है, वहाँ प्राय: बीमत्स रस की अवतारणा हुई है। संत सुन्दरदास ने 'नारी-निंदा अंग' में जगह-जगह इस प्रकार के भावों की योजना की है जहाँ नारी के माँसल देह और रूप सौंदर्य के प्रति आकर्षण की अपेक्षा घृणा का भाव ही पैदा होता है। गुजरात के सन्तों ने भी मनुष्य देह की नश्वरता की ओर इंगित करते हुए इस प्रकार की जुगुप्सा-भावना व्यक्त की है। उदाहरणार्थ—

'जो तुं मानत है करि मेरा,
तामें कौन पदारथ तेरा जी।
रस वीरज का देह बनाया, पंचभूत का डेरा।
हाड़ पिंजर चाम लपेटा, मल भरिया बहुतेरा,
नवे द्वार से निकसत सारा, है दुर्वास घनेरा।'
—छोटम।

'टूट्यो तन गात ममत भेट्यो नहीं फूट फजीत पुरानी सो पंजर
जर्जर अंग फुल्यो तन नीचे जैसेहि वृद्ध भयो चले कुंजर।
फटे से नैन दसन बिन बैन, ऐसो फबे जैसो ऊजर खंजर।'
—अखा।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि सन्तों के काव्य में विभिन्न रसों की योजना हुई है। हास्य एवं बीमत्स रस की भाँति इनकी रचनाओं में भयानक, रौद्र तथा करुण रस की अवतारणा भी हुई है। बापू साहब प्रभृति सन्तों ने करुण रस की योजना के लिए विभिन्न 'राजिया' लिखे हैं। काल के कराल गाल का वर्णन करते हुए इन सन्तों ने भयानक दृश्यों की योजना भी इतस्तत:

की है । इस प्रकार हम देखते हैं कि इनके रहस्यवादी रूपकों में संयोग तथा वियोग मूलक भक्तिरस की निष्पत्ति हुई है । अन्य रसों में शान्त तथा अद्‌भुत रस उल्लेखनीय हैं जबकि हास्य, वीर, भयानक आदि गौण होकर आये हैं । सन्तों की रस योजना के विषय में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन्होंने क्योंकि मुक्तक पद ही प्रधानतया लिखे, अत: उनमें रस निष्पत्ति खोजना व्यर्थ है । भाव, विभाव, संचारी भावों की पूर्ण योजना तो प्रबन्ध काव्यों में ही संभव है । अत: इनके मुक्तक पदों में रस के छींटे ही देखे जा सकते हैं । विविध रसों की योजना होते हुए भी शास्त्रीय पद्धति पर उनमें रसों का पूर्ण परिपाक प्राय: नहीं हो सका है ।

संगीत :

संगीत और काव्य का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है । दोनों गतिशील कलाएँ हैं तथा दोनों ही कर्णेन्द्रिय के माध्यम से आनन्दानुभूति कराती हैं । संगीत में जहाँ भावों की सूक्ष्म एवं निराकार अभिव्यक्ति होती है, वहाँ काव्य में उसीका साकार आयोजन होता है । एक का सर्जक नाद-शिल्पी है जबकि दूसरे का शब्द-शिल्पी । किन्तु नाद एवं शब्द की समन्वयात्मक रचना जहाँ होती है, काव्य का श्रेष्ठतम अंश भी वहीं जन्म लेता है । इस रूप में काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ते हुए अनेक पाश्चात्य मनीषियों ने आनंद-दायक विचारों से युक्त संगीत को काव्य की संज्ञा से अभिहित

किया ।[१] भारतीय आचार्यों ने यद्यपि संगीत के परिवेश में काव्य की परिभाषा नहीं की, तथापि काव्य में संगीत तत्त्व के महत्त्व को प्रकारान्तर से स्वीकार किया था ।[२]

संगीत संतवाणी का आधार तत्त्व है । अनगढ़ शब्दों और अव्यवस्थित छन्दों में कही गयी संतवाणी भी लोगों को प्रभावित करती है उसका एकमात्र कारण है — उसमें निहित संगीत । गुजरात की गेय संतवाणी छन्दोबद्ध होने के साथ-साथ प्राय: संगीतबद्ध भी है । उसकी योजना विभिन्न राग रागिनियों एवं तालों में हुई है । संतों को यद्यपि संगीत का शास्त्रीय ज्ञान नहीं था, तथापि लोक–कंठों से गूँज उठने वाली विभिन्न लोक धुनों एवं प्रचलित राग — रागिनियों की पकड़ इन्हें अवश्य थी । पदों में 'ध्रुव' 'टेक' एवं विविध रागों के निर्देश इस तथ्य के सूचक हैं कि इन्हें ताल, स्वर एवं लय आदि का सामान्य ज्ञान अवश्य था । हृदय की रागात्मक, निष्कपट अभिव्यंजना शक्ति के माध्यम से सन्तों ने जिस काव्य का सृजन किया उसमें आन्तरिक संगीतात्मकता के गुण तो विद्यमान थे ही, संगीत के प्रति उनका सहज आकर्षण बाह्य संगीत की योजना में भी कुछ अंशों तक सहायक हो सका था । मीरांबाई, गवरीबाई, अनुभवानंद तथा वस्ता आदि सन्तों के मार्मिक पद इस कथन के प्रमाण हैं ।

गुजरात की सन्तवाणी में जिन प्रमुख रागों के निर्देश मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं बसन्त, मल्हार, केदार, धमार, सारंग, भैरव, बिभास, बिलावल, गोड़ी, कल्याण, कानडो : कान्हरा :, आसावरी,

---

१.(a) "Music when combined with a pleasureable idea, is poetry, music, without the idea, is simply music; the idea, without the music, is prose from its very definitness."
-Edgar Allanpoe, An Anthology of Critical Statements, P.69.

(b) " A musical thought is one spoken by a mind that has penetrated into the inmost heart of the thing, detected the inmost mystery of it." - T.Carlyle.
-An Anthology of Critical Statements, page-61

२. 'काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध'— डॉ.उमा मिश्र, पृ.३८,३९ ।

प्रभात, साँभरी, मारू, जैजैवंती, विहाग, सदर, होरी, भैरव, खमाच, रामकली, टोड़ी, देव गंधार, ठुमरी, पूर्वी, सोहिणी, संकेत, *काफी,* मेवाड़ा तथा सोरठ आदि ।

राग रागिनियों की भाँति निम्नलिखित ताल भी गुजराती संतों को विशेष प्रिय रहे हैं, जिनका उल्लेख उनके पदों में मिलता है —

हींच : छः मात्रा :, रूपक : सात मात्रा :, दादरा :छः मात्रा:, कहरवा : आठ मात्रा :, भपताल : दस मात्रा :, एक ताल : बारह मात्रा : और तीन ताल : सोलह मात्रा ।

संत क्योंकि मनमौजी एवं फक्कड़ प्रकृति के थे, अतः उन्होंने संगीत एवं काव्य के नियमों का यथावत् पालन कहीं भी नहीं किया । परम्परा को तोड़कर गाने में उन्हें विशेष आनंद आता था ।[1] ये तो उस अलौकिक जगत के वासी थे जहाँ अनहद का बाजा निरन्तर बजता रहता है और जहाँ छत्तीसों राग सुनाई देते हैं । वस्तुतः इन्हें न तो काव्य की किसी विधा से सम्बन्ध था और न ये रागों के शास्त्रीय बन्धनों को ही स्वीकार करते थे । संगीत इन की वाणी का जन्मजात वरदान था । इनमें एक ऐसी प्रतिभा थी जिसके कारण इनकी स्वानुभव पूर्ण वाणी विभिन्न राग-रागिनियों में फूट पड़ी थी ।

गुजरात के सन्तों के काव्य में निहित संगीत दो प्रकार का है — :१: आन्तरिक । :२: बाह्य । संगीत की यह आन्तरिक योजना :क: शब्द चयन । :ख: अणुरणन । :ग: पद विन्यास । :घ: शब्दों की पारस्परिक मैत्री । :ङ: अनुप्रास योजना तथा चरणान्त में टेक अथवा ध्रुव की पुनरावृत्ति में देखी जा सकती है । इसी प्रकार से बाह्य योजना राग, ताल, 'ढाल' या 'धुन' के निर्देश के रूप में देखी जा सकती है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है कि किसी पद अथवा गीति पद में राग अथवा ताल के निर्देश को देखकर किसी रचना को

---

१. 'साँभ को राग सकारे गावै, सो साधू मोरे मन भावै ।'

— संतकाव्य, पृ.११० ।

संगीतात्मक मान बैठना बड़ी भूल है । पदों पर शीर्षक के रूपमें दियें गये ये निर्देश केवल इतना सूचित करते हैं कि अमुक पद यदि अमुक ताल में निबद्ध करके अमुक राग में गाया जायगा तो विशेष प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा । । उदाहरणार्थ—

राग बसन्त

'आली अबकों फाग मेरो मन सहरात,
ऐना तो जोबन मेरा इउहि जात ।'
—अखा ।[1]

राग मल्हार

'बरखत अनुभव उमग्यो सावन ।।
जल थल होय रह्यो सब हरिया, लागे खेत सोहावन ।।'
—अनुभवानंद ।

'ज्ञान घटा चढ़ि आई, अचानक ज्ञान घटा चढ़ि आई ।
अनुभव जल बरखा बड़ी बुंदन, कर्म की कीच रेलाई ।।'
—अखा ।

राग विहाग

'मेरो राम नायक वणफारो .....मेरो०
चौदह भुवन की रची बादली वो,
माया भार लदाणो ।...मेरो ।०
—गवरीबाई ।[2]

राग सोरठ

'भैया मेरो मनवो भयो रे वैरागी,
मारी लेह तो लगन मां लागी ।'
—मोरार साहब ।

'सामलिया तोरे सरने आये की लाज,
मैं अवगुनकारी, ना गुन सागर, मेरा गुनाह बख्शो ब्रजराज ।'
—गवरीबाई ।[3]

---

१. 'गु.व.सो, हस्त प्रति, १२१८ ।
२. 'गवरी कीर्तन माला' पृ.२१२ ।
३. वही पृ.२६६ ।

राग सदर
`गाजत गैब गगन मैं नगारा,
बाजत गैब गगन मैं ... ।`
—छोटम ।[१]

राग पूरवी
`प्रभु मोकुं एक बेर दरसन दइये ... प्रभु०
तुम कारन मैं, भइ रे दिवानी,
उपहास जगत की सहिये ।`..प्रभु०
—गवरीबाई ।[२]

सन्तों की छन्द योजना के अंतर्गत हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि संगीत की सुलभता के हेतु संतों ने मात्रिक छन्दों को ही विशेष रूपेण अपनाया था । इस रूप में संगीत के चार मात्रा घटक के साथ चरणाकुल, रोला, सवैया, रुचिरा, लीलावती, प्रज्ञावती और गीति, छ: मात्रा घटक के साथ हीर महीदीप और तोटक, पाँच और दस मात्रा के साथ फूलणा, दीपक आदि, सात मात्रा के साथ हरिगीति, अघोर छन्द तथा गजल के रमल और हज्ज़ आदि छन्दों की संगति सहज ही बिठायी जा सकती है ।

जैसा कि हम ऊपर कह गये हैं कि संगीत सन्तवाणी का आधार तत्त्व है, उन्होंने पद लालित्य एवं छन्द-छटा की अपेक्षा स्वर एवं ताल के आधार पर अपनी वाणी का वितान ताना था । संगीत में भी उन्होंने शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा सुगम लोक संगीत की अवतारणा ही विशेषत: की थी । इस क्षेत्र में सोरठ राग में लोग-धुनें तथा हीच-ताल में निबद्ध गरबा-गरबी गुजरात के संत-कवियों की हिन्दी को विशिष्ट देन हैं ।

०० ०० ००

---

१. `छोटम वाणी` ग्रन्थ-९, पृ.१७३, पद-२८१ ।
२. `गवरी कीर्तन माला`, पृ.२५६, पद-५५७ ।